# उद्यानिकी विकास : महत्व एवम् त

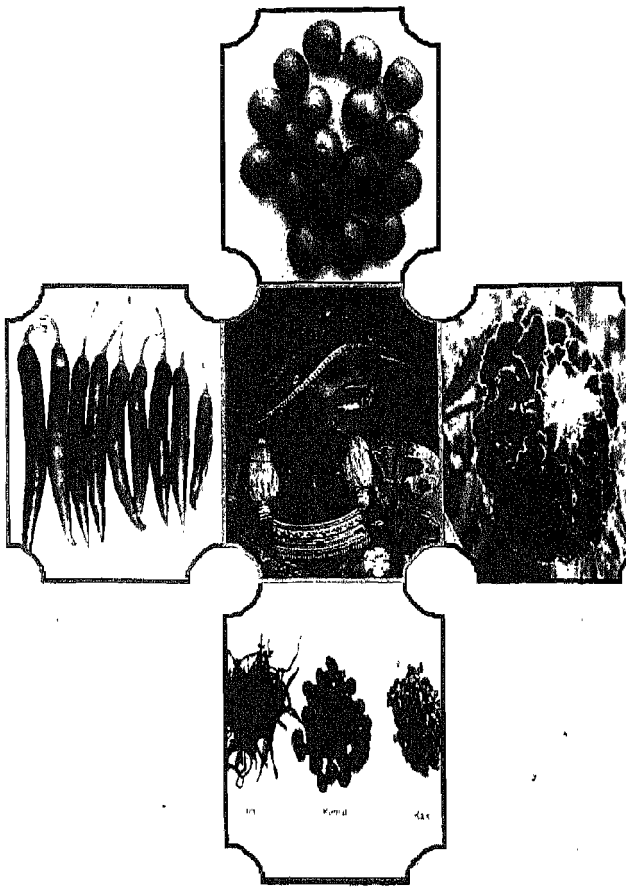


सम्पादक

❖ बीरबल ❖ बी. एस. राठौड़ ❖ जे. पी. सिंह ❖ एन. एस. नाथावत

# अनुक्रमणिका


| क्र. सं. | शीर्षक | पेज नं. |
|---|---|---|
| 1. | शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी विकास : महत्व व संभावनाएं | 4–7 |
| 2. | गृह वाटिका | 8–15 |
| 3. | शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रो में खरीफ सब्जी उत्पादन | 16–20 |
| 4. | शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो में रबी सब्जी उत्पादन | 21–26 |
| 5. | बीजयी मसालों फसलोत्पादन– महत्व व उत्पादन तकनीक | 27–36 |
| 6. | शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पुष्प उत्पादन : सम्भावनाये एवं तरीके | 37–43 |
| 7 | शुष्क क्षेत्र में फल उत्पादन | 44–49 |
| 8. | शुष्क क्षेत्रों में फलों की बागवानी की तकनीक | 50–55 |
| 9. | फलदार पौधों का प्रवर्धन एवं रोपण | 56–62 |
| 10. | उद्यानिकी फसलों की पौधशाला महत्व एवं तकनीक | 63–70 |
| 11. | उद्यानिकी फसलों का तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन एवम् भण्डारण | 71–78 |
| 12. | उद्यानिकी फसलों में पोषक तत्व प्रबन्धन : सिद्धान्त एवं तकनीकें | 79–84 |
| 13. | बागवानी विकास हेतु मृदा संसाधन : जानकारी एवं प्रबंधन | 85–87 |
| 14. | उद्यानिकी फसलों में जल प्रबन्धन | 88–92 |
| 15. | शुष्क क्षेत्रिय फल वृक्षों में समन्वित नाशीजीवी प्रबंधन | 93–99 |
| 16. | उद्यानिकी फसलों में पौध व्याधि प्रबंधन | 100–112 |
| 17. | उद्यानिकी फसलों में प्लास्टिक पलवार का प्रयोग | 113–117 |
| 18. | उद्यानिकी फसलों का वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धितियों में समावेश | 118–120 |
| 19. | उद्यानिकी फसलों में पादप वृद्धि नियंत्रकों एवम् नियामकों का प्रयोग | 121–126 |
| 20. | सब्जियों एवं फलों का परिरक्षण | 127–134 |

# शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी विकास : महत्व व संभावनाएं

वी.एस. राठौड़, जे.पी. सिंह, बीरबल, एन.एस. नाथावत एवं सीमा भारद्वाज
*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसधान संस्थान, प्रोदशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

मानव की पोषण सुरक्षा के बिना प्राकृतिक संसाधनों के अवक्रमण किए हुए सुनिश्चित करना कृषि अनुसंधान–कृताओं तथा योजनाकारों के लिए इक्कीसवी शताब्दी की एक प्रमुख चुनौती है। विश्व के शुष्क एवम अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में विषम जलवायु, जल स्त्रोतों की कमी, मृदा अवक्रमण, कम कृषि उत्पादकता एवं तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण यह चुनौती और भी ज्यादा मुश्किल है। जहां एक तरफ जनसख्या वृद्धि के कारण कृषि उत्पादों की मांग उतरोत्तर बढ रही है वहीं कृषि के योग्य भूमि तथा जल की उपलब्धता में कमी आ रही है। अत: प्रति इकाई भूमि व जल की उत्पादकता को बढ़ाना ही इन समस्याओं से निजात पाना एक मात्र विकल्प नजर आता है। विश्वव्यापी अनुसंधान एवम अनुभव यह दर्शाते हैं कि उद्यानिकी विकास के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के ईष्टतम उपयोग के साथ– साथ जनमानस के पोषण तथा आय को बढ़ाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी विकास के महत्व व सभावनाओ का महिलाओं के विकास के सदर्भ में वर्णन किया गया है–

**उद्यानिकी विकास का महत्व–**

**1. पोषण सुरक्षा–** स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में खाद्यान उत्पादनों में सराहनीय वृद्धि हुई। खाद्यान उत्पादन जो कि सन् 1950 में मात्र 50 मिलियन टन था, 2007–08 में 230.78 मिलियन टन हो गया। इस वृद्धि के साथ ही हमारा राष्ट्र खाद्यान उत्पादन की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो गया है। खाद्यान उत्पादन में प्रशंसनीय वृद्धि के उपरान्त भी, भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा जिसमें महिलाए एवं बच्चे प्रमुख हैं को पर्याप्त पोषण नहीं मिल पा रहा है। खाद्य एवमं कृषि संगठन के एक नवीन आंकलन के अनुसार भारत की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषण से ग्रसित हैं। इस समस्या के विशद विश्लेषण यह इंगित करता हैं कि भारत में फल एवं सब्जियों का उपयोग वांछित स्तर से कम है। यह सर्वविदित तथ्य है कि फल एवं सब्जियां खनिज लवणों, विटामिन्स एवं प्रोटीन के मुख्य स्त्रोत है। पोषण सुरक्षा भोजन की भौतिक तथा आर्थिक उपलब्धता पर निर्भर करती है तथा भारत जनसंख्या का बड़ा अंश उपयुक्त क्रय शक्ति के अभाव में वांछित पोषण प्राप्त नही कर पाती। उद्यानिकी फसलों का उत्पादन खाद्य पदार्थों की भौतिक उपलब्धता के साथ–साथ आर्थिक उपलब्धता को बढ़ाने में बहुत सहायक है।

**2. उत्पादकता एवम् लाभांश में वृद्धि :–** एकल शस्य फसलोत्पादन की तुलना में उद्यानिक फसलों का कृषि उत्पादन प्रणाली में समावेश ज्यादा उत्पादन व लाभ प्रदान करता है। फलदार

वृक्षों का शस्य फसलों के साथ समावेश करने पर प्रति इकाई समय में ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। फलदार वृक्षों को शस्य फसलों के साथ लगाने पर भूमि उपयोग की सघनता बढ़ने के साथ–साथ अन्य संसाधनों जैसे जल, मृदा पोषक तत्वो, इत्यादि का इष्टतम उपयोग होता है। फलदार वृक्षों को उत्पादन में प्रारम्भ के 3–4 वर्षों तक विशेष देखभाल तथा आदानों की आवश्यकता होती है इसके पश्चात उत्तरोत्तर इनकी लागत में कमी हो जाती है। तथा इनके उत्पादों से प्राप्त आय, कृषक को अतिरिक्त आय के रूप में प्राप्त होती है । उपयुक्त विपणन व्यवस्था वाले क्षेत्रों मे जायद काल मे कद्दुवर्गीय कुल की सब्जियों के उत्पादन से भू–उपयोग सघनता में वृद्धि के साथ–साथ अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इसी प्रकार फलदार वृक्षों के साथ सब्जियो विशेषकर दलहनी कुल की सब्जियों से फल व सब्जियों का सहउत्पादन किया जा सकता है जिससे कृषि उत्पादन व लाभांश बढता है।

3. **रोजगार सृजनः**– शस्य फसल उत्पादन में श्रमिको की मांग बुआई तथा कटाई के समय ज्यादा होती है। जिससे इन फसलों के उत्पादक कृषक परिवारों को वर्षपर्यन्त रोजगार नहीं मिल पाता। उद्यानिकी फसलोत्पादन सघन श्रम मांग वाला व्यवसाय है। उद्यानिकी फसलोत्पादन कृषक परिवार को वर्षपर्यन्त रोजगार प्रदान करने में बहुत सहायक है । राजस्थान के शुष्क एवम अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में व्यापक बेराजगारी की समस्या से निजात पाने के लिए उद्यानिकी विकास एक अच्छा विकल्प है। कृषक परिवार के अलावा उद्यानिकी फसलोत्पाद के परिवहन, विपणन एवं प्रसंस्करण उद्योगों में भी रोजगार सृजन की विपुल सभावनाएं है।

4. **जोखिम व अनिश्चितता में कमी**– कृषि उत्पादन में जलवायुवीय जैविक व कीमत जोखिम निहित होते हैं। राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहां की जलवायु विषम है यह जोखिम और भी ज्यादा है। इस क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा असिचित है। असिंचित क्षेत्रों में फसलोत्पादन, फसल काल की वर्षा की मात्रा व वितरण पर निर्भर करता है। इस क्षेत्र के जलवायुवीय आंकड़ों का विश्लेषण यह इंगित करते हैं कि वर्षा की मात्रा व वितरण में बहुत विविधता है जिसके कारण शस्य फसलों के उत्पादन में क्षेत्रवार तथा वर्षवार बहुत विविधता होती है। यह सर्वविदित तथ्य है कि बहुवार्षिक काष्ठीय वनस्पतियां (फलदार वृक्ष) विषम जलवायु परिस्थितियों के प्रति एकवर्षीय शाकीय वनस्पतियों (शस्य फसलों) की अपेक्षाकृत ज्यादा प्रतिरोधी होती है। बहुवार्षिक वनस्पतियां स्थापन अवस्था के बाद विषम जलवायुवीय परिस्थितियों को सहन कर सकती है। यहां पर यह तथ्य भी प्रांसगिक है जहां एक वर्षीय शाकीय वनस्पतियां वर्ष के किसी विशेष काल में होती है तथा उस समय विशेष में प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियां होने पर इनकी उपज पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत बहुवर्षीय वनस्पतियां वर्ष के किसी समय विशेष की प्रतिकूल परिस्थितियों के बाद अनुकूल परिस्थितियां आने पर पुनः अपनी वृद्धि कर लेती है तथा उपज प्रदान करती है । इसके साथ–साथ एकल उद्यम आधारित कृषि उत्पादन प्रणाली की अपेक्षाकृत समेकित उद्यम आधारित कृषि उत्पादन प्रणाली की कृषि उत्पादों की कीमतों के उतार–चढ़ाव जनित जोखिम को सहन करने की क्षमता ज्यादा होती है।

**5. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण–** कृषि में प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकसंगत उपयोग से इन संसाधनों का तीव्र गति से अवक्रमण हो रहा है। भविष्य में टिकाऊ व सतत विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल, जैव विविधता का संरक्षण नितान्त आवश्यक है। राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में वायु– जनित अपरदन, लवणीयता व क्षारीयता तथा जीवांश पदार्थों का क्षय मृदा समबन्धित मुख्य समस्याएं है। फलदार वृक्षों व झाड़ियों के उत्पादन प्रणाली में समावेश से वायु–जनित मृदा अपरदन को कम किया जा सकता है। वैज्ञानिक ढंग से उद्यानिकी उत्पाद प्रदान करने वाले वृक्षों एवं झाड़ियों को लगाने से मृदा को आवश्यक वनस्पतिक आच्छदन प्रदान किया जा सकता है जो कि मृदा अपरदन को रोकने हेतु सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तम विकल्प है। इन फलदार वृक्षों एवम् झाड़ियों के बीच में शस्य फसलों व हरी घासों को आसानी से उगाया जा सकता हैं। फलदार वृक्ष एवं झाड़ियां मृदा के भौतिक व रासायनिक गुणों पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। इन वृक्षों की पत्तियां, छोटी टहनियां तथा सूक्ष्म जड़ें भूमि में जीवांश पदार्थ बढ़ाती है जिससे भूमि की उर्वरता, संरचना, वातन, एवं सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ती है। जीवांश पदार्थों के विच्छेदन तथा मूल श्वसन से भूमि का पी.एच. मान कम होता है। वर्तमान परिदृश्य में वातावरण में कार्बन डाइआक्साईड की बढ़ती सान्द्रता विश्वभर में एक चिन्ता का विषय है। इस समस्या से निजात पाने के लिए बहुवार्षिक वनस्पतियों को लगाना उत्तम विकल्प है। वायुमण्डल में उपस्थित कार्बनडाइआक्साईड को पौधे प्रकाश–संशलेषण में उपयोग में लेते हैं । इस प्रक्रिया मे उपयोग में लाई गई कार्बन का एक अहम् हिस्सा पौधे की जड़ों में संचित होता है। बहुवार्षिक काष्ठीय वनस्पतियां, शाकीय वनस्पतियों की अपेक्षाकृत ज्यादा मात्रा में तथा अधिक गहराई पर इस तरह स्थिर की गई कार्बन को संचित करती है। अतः फलदार वृक्षों व झाड़ियों को कृषि उत्पादन प्रणाली में समावेश करने पर आर्थिक के साथ–साथ पर्यावरणीय लाभ भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

इन क्षेत्रों में अच्छे गणुवत्ता वाले जल की कमी है। इस क्षेत्र के सतत विकास के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध जल का अधिकतम दक्षता के साथ उपयोग किया जाये। इस क्षेत्र में किये गये अनेक अनुसंधानों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि उद्यानिकी फसलों की जल उपयोग दक्षता अन्य फसलों की अपेक्षाकृत ज्यादा होती है। फलदार वृक्षों शस्य फसलो के सहउत्पादन से उपलब्ध वर्षा व सिंचाई की उपयोगी क्षमता बढ़ती है। भारी वर्षा व सिंचाई की स्थिति में जल का एक बड़ा हिस्सा भूमि की निचली संस्तरों में चला जाता है, जिसका उपयोग एक वर्षीय शाकीय फसलें कम गहरे मूल तन्त्र के कारण नहीं कर पाते, इस जल का उपयोग बहुवार्षिक फलदार वृक्ष अपने गहरे मूल तंत्र के कारण आसानी से कर लेते हैं इस क्षेत्र में उपलब्ध भू–जल मुख्य रूप से लवणीय है इस जल का उपयोग लवण प्रतिरोधी फलदार वृक्षों के उत्पादन में आसानी से किया जा सकता है।

**6. अन्य उद्योगों का विकास–** उद्यानिकी विकास से इस क्षेत्र में अन्य उद्यागों के विकास की विपुल संभावनाएं हैं। उद्यानिकी उत्पाद (फल, सब्जी व पुष्प) जल्दी खराब हो जाते हैं अर्थात

इनकी सेल्फलाईफ अन्य फसलोत्पादों की तुलना में कम होती है। इन फसलों के उत्पादन में वृद्धि से इन उत्पादों के संग्रहण, विपणन व प्रसंस्करण उद्योगों के विकास की बहुत अधिक संभावनाएं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार के उद्योगों के विकास इन क्षेत्रों के आर्थिक व सामाजिक विकास में बहुत महत्वूपर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

**7. महिलाओं का विकास–** उद्यानिकी विकास का महिलाओं के विकास से सीधा संबंध हैं। उद्यानिकी विकास से फल व सब्जियों की आपूर्ति बढ़ेगी जो कि महिलाओं की पोषण सुरक्षा को बढ़ाएगी। उद्यानिकी फसलों के उत्पादन व प्रसंस्करण से महिलाओं को रोजगार मिलेगा तथा उनकी आय में बढ़ोतरी होगी जो कि महिलाओं के आर्थिक स्वावलम्बन को सुदृढ़ करने में साहायक होगी। अच्छे पोषण व आर्थिक स्वावलम्बन से महिलाओं की समाजिक स्थिति में सुधार होगा। अतः महिलाओं के विकास में उद्यानिकी विकास का अहम् योगदान है।

उपरोक्त वर्णित महत्वों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि उद्यानिकी विकास राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण व सामाजिक विकल्प है।

## उद्यानिकी विकास की सम्भावनाएं

राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी विकास की विपुल सम्भावनाएं है कुछ महत्वपूर्ण सम्भावनाओं का विवेचन निम्नलिखित है–

1. राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की जलवायु व मृदाओं मे व्यापक विभिन्नता है जहां पर अनेक प्रकार की उद्यानिकी फसलें उगायी जा सकती हैं।
2. देश के अन्य क्षेत्रों की तुलना में इस क्षेत्र में कृषिजोत का आकार अधिक है। जिसके कारण शस्य फसलों के साथ उद्यानिकी फसलों का समावेश आसानी से किया जा सकता है।
3. वर्ष के अधिकांश समय इन क्षेत्रों का मौसम शुष्क, कम आर्द्रता वाला तथा आसमान साफ रहता है जिससे यहां पर नाशी कीटों व व्याधियों का प्रकोप कम होता है। इस कारण यह क्षेत्र उच्च गुणवत्ता वाली उद्यानिकी उत्पादों तथा प्रवर्धन सामग्री उत्पादन के लिए उत्तम है।
4. इस क्षेत्र का बड़ा भू–भाग आकर्षित है, इस भू–भाग का प्रयोग कम देख भाल चाहने वाले बहुउदेशीय उद्यानिक वृक्ष (जो फल के साथ–साथ चारा व इंधन लकड़ी) प्रदान करने वाली प्रजातियों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है।
5. इस प्रदेश की देशज वनस्पतियों में इस क्षेत्र की विषम जलवायुवीय परिस्थितियों को सहन करने की अद्‌भुत क्षमता है।
6. इस क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है तथा वर्ष–पर्यन्त श्रमिक उपलब्ध रहती हैं। उद्यानिकी व्यवसाय जिसमें श्रमिक मांग अधिक होती है के विकास के लिए यह एक संसाधन के रूप में प्रयोग की जा सकती है।
7. इस क्षेत्र में उद्यानिकी फसलों के अनुसंधान, शिक्षा व प्रचार–प्रसार के पर्याप्त संस्थान है।

***

# गृह वाटिका

बीरबल, वी.एस. राठौड, एन.एस. नाथावत, सीमा भारद्वाज एवं जे.पी. सिंह
*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थान, बीकानेर*

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन के 1988 के दौरान विकासशील देशों में दिये गये एक अध्ययन के अनुसार इन देशों में 50 प्रतिशत से अधिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन महिलाओं द्वारा किया जाता है तथा इनके योगदान को देखते हुए यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि महिलाएं विश्व की खाद्य पदार्थों की मुख्य उत्पादक हैं। महिलाओं के क्रियाकलापों में पारिवारिक कार्यों, सामाजिक दायित्वों के साथ–साथ परिवार को पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने का मुख्य दायित्व है तथा उपलब्ध पारिवारिक संसाधनों से परिवार की पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने का मुख्य उत्तरदायित्व है। सब्जियां एवं फल मानव आहार के प्रमुख घटक हैं तथा एक संतुलित पोषण के लिए इनका समावेश आहार में अति आवश्यक है। गृह वाटिका में इनका उत्पादन करके न्यूनतम लागत पर इनकी उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। गृहवाटिका की सफलता के लिए महिलाओं के दृष्टिकोण, उनकी आवश्यकताओं का समावेश तथा उनकी सहभागिता मूल मंत्र है। यह सर्वविदित तथ्य है कि भूमि तथा जल कृषि के दो मुख्य आदान हैं तथा इनका समुचित एवं विवेक संगत प्रबन्धन कृषि उत्पादन एवं राष्ट्रीय खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिये नितान्त आवश्यक है। इन संसाधनों के समुचित उपयोग एवं प्रबन्धन का ही एक विकल्प है गृहवाटिका, जिसमें घरेलू स्तर पर उपलब्ध भूमि तथा जल का उपयोग फल एवम् शोभाकारी पौधों, सब्जियों के उत्पादन में किया जा सकता है। गृहवाटिका पारिवारिक स्तर पर पोषण को सुनिश्चित करने के साथ–साथ आर्थिक स्वावलम्बन को बढ़ाने तथा पर्यावरणीय संरक्षण में महती भूमिका रखता है। गृहवाटिका की सफलता का मूल मन्त्र है कि इसके लिए स्थान, पादप प्रजातियों का चुनाव, क्षेत्र की कृषि, जलवायुवीय परिस्थितियों तथा घरेलू स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप करें तथा इनके उत्पादन एवं संरक्षण का समग्र प्रबन्धन करें। गृहवाटिका एक व्यापक शब्द है, जिसका सामान्य शब्दों में तात्पर्य गृह क्षेत्र में परिवार विशेष की संसाधन क्षमता, आवश्यकताओं तथा पसन्द के अनुसार विभिन्न प्रकार के पौधे लगाना है, जिनसे प्राप्त उत्पादों एवं सेवाओं (मनोरंजन, शोभा, सजावट, धार्मिक) का उपयोग किया जाता है। घरों के चारों ओर उपलब्ध खाली स्थान में बनाई गई बगिया (गृहवाटिका) को कई घटकों में बांटा है :

**1. शोभाकारी :–** यह आकर्षण का केन्द्र होती है और मकान के सामने एक ओर या दोनों

ओर बनाई जाती है। मकान से बाहरी सडक को जोडने वाला मार्ग प्रायः दो भागों में बांट देते हैं। लॉन इसके एक या दोनों ओर बनाया जा सकता है। लॉन के चारो ओर मौसमी फूलों की क्यारियां बनाई जा सकती है। लॉन के बीच में शोभाकारी वृक्ष या झाड़ीदार पौधा भी लगाया जा सकता है। किनारों पर विभिन्न प्रकार के शोभाकारी पत्तियों या फूलों वाले वृक्ष झाड़ियां, लताएं उगाई जा सकती हैं;

**2. सब्जी वाटिका**– मकान के पिछवाड़े में विविध प्रकार की सब्जियां उगाने के उद्देश्य से इस प्रकार नियोजित करना चाहिये कि कुछ न कुछ सब्जिया हर रोज प्राप्त होती रहे। इसे बाड़ से घिरा होना चाहिये ताकि यह सुरक्षित रहे।

**3. फल वाटिका**– मकान के किनारों पर या पिछवाड़े उपयुक्त स्थान पर मध्यम ऊंचाई वाले फल वृक्ष जैसे अनार, मौसमी, अमरूद, आम (आम्रपाली) नीबू, आंवला आदि लगाये जा सकते हैं, सब्जी वाटिका की बाहरी मेड़ के साथ पपीते के पेड़ लगाये; आंगन में छप्पर या तार का जाल डालकर अंगूर की बेल फैलाई जा सकती है;

**4. बरामदों, छज्जों और छतों पर बागवानी**– विभिन्न आकार–प्रकार वाले पात्रों में नाना प्रकार के पौधे लगाकर उनसे बरामदे, छज्जे आदि स्थानों की सजावट की जा सकती हैं प्रायः इन स्थानो पर सजावटी पत्तियों वाले पौधे कैक्टस और अन्य गुद्देदार पौधे भी लगाए जाते हैं। छत पर प्लास्टिक व जूट के कट्टों/बोरियां में मिट्टी का उपजाऊ मिश्रण मिलाकर उनमें सजावटी व कद्दूवर्गीय सब्जियां आदि लगाई जाती है।

**5. गमले और अन्य पात्र**– बरामदे, खिड़कियों के छज्जों आदि स्थानों में रखने के लिये और आंतरिक सज्जा के लिये गमले व अन्य पात्र तैयार करने के लिये मकान के पीछे के भाग में कोई स्थान निर्धारित होना चाहिये। इस स्थान पर मृदा मिश्रण तैयार करने, मृदा को निर्जलीकृत करने, खाद छानने, गमला भरने व बदलने जैसे कार्य सम्पन्न किये जा सके।

**6. गुलदस्तों और अन्य उपयोग के लिये पुष्प वाटिका**– फूलों की आवश्यकता गुलदस्तों में सजाने, पूजा आदि धार्मिक कृत्यों समारोहों तक त्यौहारों के अवसर पर सजावट आदि के लिये भी होती है। यदि इन उद्देश्यों के लिये मुख्य वाटिका के फूल काटे जाते हैं तो इसका सौंदर्य कम होता है। अतः घर के किसी कोने पर इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विशेष रूप से एक छोटी पुष्प वाटिका बनाई जाती है। इसमें पूजा आदि समारोहों के लिये बेला, चमेली आदि बहुवर्षीय तथा गेंदा, एक वर्षीय गुलदाउदी जैसे पौधे भी उगाए जा सकते हैं। गुलदस्तों के लिये ऐसे फूलों का चयन किया जाता है, जिनकी टहनियां लम्बी हो और जो काटने के बाद गुलदस्तों में अधिक समय तक टिकते हों।

**7. कुंज**– खूब घने, आकर्षण तथा सुगन्धित पुष्प वाले लतीय पौधों का उपयोग करना चाहिये

ताकि घर के किसी कोने में उपलब्ध स्थान पर एक कुंज अवश्य बनाना चाहिये। कुंज के भीतर बैठने को पर्याप्त स्थान हो, एकान्त तथा शांति भी रहे और इस स्थान को एक निजी कोने की भांति उपयोग किया जा सके।

**8. चारदीवारी और अन्य स्थानों की बाड़ (हेज)**– मकान की चारदीवारी के साथ– साथ सुन्दर पत्तों, फूलों अथवा संरचना वाले झाड़ीदार पौधे लगाए जा सकते हैं। चारदीवारी की दीवार अथवा कंटीले तारों पर भी नाना प्रकार की लताएं चढ़ाई जा सकती हैं लॉन के चारों ओर पुष्प क्यारियों के चारों ओर, गुलाब वाटिका के किनारे तथा मुख्य मार्ग के दोनों ओर बाड़ अथवा किनारी लगाई जा सकती है।

**9. भवन/घर तक का मुख्य मार्ग**– मुख्य मार्ग के दोनों ओर किनारी से घिरी हुई मौसमी फूलों की क्यारियां, गुलाब की क्यारियां, बाड़, मोरपंखी, अशोक आदि सुन्दर पत्तियों वाले झाड़ीदार पौधे या वृक्ष अथवा फूलदार झाड़ियां या वृक्ष लगाए जा सकते हैं। मार्ग यदि कच्चा है तो उसकी सफाई आदि पर नियमित रूप में ध्यान देना चाहिये। कंकड़ या बजरी बिछी सड़कों पर कंकड़–बजरी को समान रूप से फैलाने पर भी ध्यान देना चाहिये।

**10. सिंचाई की नाली**– गृहवाटिका में प्रत्येक दिन सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। गृहवाटिका की प्रत्येक क्यारी के पास सिंचाई की नाली नहीं होनी चाहिए। स्वयं नाली का उपयोग भी सब्जियां उगाने में किया जा सकता है, जैसे दो नालियों के बीच में पुदीना उगाया जा सकता है। टमाटर के पौधे लकडी के सहारे के साथ उगाए जा सकते हैं। यदि घर में रबर की पाइप प्रयोग किया जाए तो नाली की आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन पाइप के आगे फव्वारा लगाकर पानी देना चाहिए ताकि पानी का वितरण अच्छा हो सके, और कम पानी से ज्यादा क्षेत्र में सिंचाई कर सकें। यदि गृहवाटिका की साइज बड़ी है तो माइक्रो स्प्रिंकलर एक फव्वारा लगाकर भी सिंचाई की जा सकती है।

**11. खाद का गड्ढ़ा**– घर की गंदगी, रसोई घर के बचे–खुचे पदार्थ और वाटिका की फसलों के अवशेषों के सदुपयोग के लिये गृहवाटिका में एक खाद का गड्ढ़ा होना चाहिये। इस गड्ढ़े का आकार घर तथा गृहवाटिका के अनुसार रखा जाता है; लेकिन इसकी व्यवस्था गृहवाटिका के एक कोने में ही होनी चाहिये। इस गड्ढ़े के ऊपर पंडाल बनाकर लता वाली सब्जियों को उगाया जा सकता है, जिससे पैदावार भी मिलेगी व गंदगी को छिपाया जा सकेगा।

**12. पौधशाला (नर्सरी)**– मिर्च, फूलगोभी, पत्तागोभी, प्याज, बैंगन व टमाटर जैसी सब्जियों की पौध तैयार करने के लिये गृहवाटिका में पौधशाला को होना आवश्यक है, मौसमी फूलों के बीज पौधशाला में ही उगाए जाते है। इसके अलावा अनेक पेड़–पौधों की कलमें आदि भी पौधशाला में तैयार की जाती है। पौधशाला को गृहवाटिका के किसी ऊंचे स्थान पर जहां खूब ध

ूप आती है उस कोने में बनाया जा सकता है। स्थान की कमी होने पर पौधशाला का कार्य नालीनुमा गमलों में भी किया जा सकता है।

तालिका –1 पश्चिमी राजस्थान में गृहवाटिका के लिए उपयुक्त सब्जियां एवं फल

| | | |
|---|---|---|
| फल | : | नींबू, पपीता, अनार, मौसमी, बेर, बेल, |
| सब्जियां | : | कद्दूवर्गीय, मिर्च, बैंगन, टमाटर, मटर, पुदिना, धनियां, मैथी, मूली, गाजर, फूल गोभी एवं पत्तागोभी इत्यादि। |

**गृहवाटिका के प्रकार**– पेड़–पौधों को वर्गीकृत करने का कार्य उगाने की सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। वर्गीकरण का आधार व्यक्तिगत रूचि, रंग, मौसम, जीवनकाल के आधार पर किया जा सकता हैं गृहवाटिका को कई तरह से वर्गीकृत किया जाता है जिनका उल्लेख नीचे लिखेनुसार है :–

**1. पुष्प–वाटिका**

**(अ) मौसम के अवधि के आधार पर–**

1. ग्रीष्म तथा वर्षाकालीन पुष्प : बुआई का समय अप्रेल– मई । उदाहरण :– बालसम, कॉस्मोस, गोम्फरीना, कोचिया, जीनिया, सूरजमुखी आदि
2. शीतकालीन पुष्प : बुआई का समय सितम्बर–अक्टूबर में। उदाहरणः एन्टीराइनम, स्वीट एलाइसम, एस्टर ब्रैचीकोम, केलेंनडुला, कैण्डीखर, फलास्क, वर्गीना, क्लार्किया, पेन्जी, पिटूनिया, पौपी, साल्विया आदि।

**(ब) रंग के आधार पर**– फूल के रंगों के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे पीला (कलेन्डूला, वोनेडियम, सूरजमुखी आदि), सफदे (केन्डीटफट) लाल (साल्विया, डायन्थस), नीला (लार्कस्पर, एस्टर आदि)।

**(स) स्वरूप तथा आकार के आधार पर–**

1. शाकीय पौधे : जैसे फलास्क, केलेनडुला आदि
2. झाड़ीदार पौधे : जैसे एकीनिया, जैट्रोफा, कैमोलिया
3. लतीय पौधेः जैसे ऐस्पेरेगस, ऐलोमेण्डा, बोगनविलिया, बसंतमालती, कनकलता
4. वृक्षः जैसे अमलताश, मैन्नोलिया, बॉटल ब्रुश, अशोक आदि।

**2. सब्जी वाटिका–**

**(अ) मौसम के आधार**– जैसे रबी/सर्दी की सब्जियां (मूली, शलजम, गाजर, फूलगोभी, पत्तागोभी, पालक, मैथी, मटर, सेम, आलू, प्याज, लहसुन, एवं धनियां आदि)। खरीफ/ वर्षा ऋतु की सब्जियां(लौकी, परवल, तोरइ, करेला, चौलाई) तथा गर्मी/ जायद की सब्जियां लौकी, करेला, टिण्डा, भिण्डी, लोबिया, ग्वार, चौलाई आदि। इस प्रकार फलों

को भी मौसम के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

(ब) **उपयोग किये जाने वाले भाग के आधार पर**– जैसे जड़ (मूली, शलजम, गाजर), कन्द (आलू, शकरकन्द), शलककन्द (प्याज, लहसुन), पतियां (पालक, मैथी, चोलाई, धनियां, आदि), फूल (फूलगोभी), फल (टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिण्डी, तोरई, लोकी), फली (ग्वार, सेम, लोबिया, मटर) आदि।

(स) **वानस्पतिक वर्गीकरण के आधार पर**– जैसे सोलोनेसी कुल की सब्जियां (टमाटर, बैंगन, मिर्च आदि) कुकुरबिटेसी कुल की सब्जियां (कद्दू, लौकी, करेला, परवल, खीरा, खरबूजा आदि) लेगुमिनेसी कुल की सब्जियां (मटर, सेम, लोबिया, आदि) क्रुसीफेरी कुल की सब्जियां (पतागोभी एवं फूलगोभी आदि)

**3. सामान्य वाटिका में–**

गृहवाटिका का स्वरूप, स्थान की उपलब्धता, गृहस्वामी की रूचि और आर्थिक स्तर आदि के अनुसार बदल जाता है। इस दृष्टि से गृहवाटिका के विभिन्न स्वरूप निम्नलिखित हो सकते हैं:–

**(अ) आवश्यकतानुसार गृहवाटिका–**

1. **सब्जी प्रधान गृहवाटिका**– आज के परिवेश में बाजार में महंगी सब्जियां उपलब्ध होती है और उनमें कीटनाशकों का अवशेष भी मिलता है जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर दिन प्रतिदिन बुराप्रभाव पड़ता जा रहा है और सब्जी की आवश्यकता प्रत्येक परिवार को होती है। अतः उनका पूरे वर्ष इस ढंग से उगाया जाता है कि कम क्षेत्र से भी अधिक उत्पादन मिल सके। ऐसी गृहवाटिका में मेड़ों पर जड़ वाली सब्जियां उगाई जा सकती है तथा पानी की नालियों एवं कम्पोस्ट गढ्ढे को भी लता वाली सब्जियों से ढक दिया जाता है। जिससे पूरे क्षेत्र का अधिकतम सदुपयोग किया जा सकें।
2. **फल प्रधान गृहवाटिका**– स्थानीय फलों को गृहवाटिका मे उगाकर परिवार की फलों की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है, इन गृहवाटिकाओं में नींबू, मौसमी, अमरूद, पपीता, आंवला, आम, सेब, अनार, स्ट्राबेरी जैसे फल वृक्षों को उगाया जाता है। इनको उगाने का स्थान सब्जी उत्पादन क्षेत्र से अलग होता है, जिससे कि इन वृक्षों की छाया पड़ने से सब्जियों का उत्पादन कम न हो जाए।

**3.पुष्प प्रधान गृहवाटिका :**

आर्थिक स्थिति से सम्पन्न परिवारों द्वारा शोभाकारी उद्देश्य से यह गृहवाटिका लगाई जाती है। इनमें सब्जियों व फलदार वृक्षों के बजाय फूलों की क्यारियों, गमलों व अन्य शोभाकारी पेड़–पौधों तथा लॉन को प्राथमिकता दी जाती है। इनका क्षेत्रफल अधिक होता है।

4. फसल प्रधान गृहवाटिका–

अधिक क्षेत्र उपलब्ध होने पर अपनी आवश्यकता की सब्जी व फल उगाने के बाद बचे क्षेत्र का उपयोग अनाज व दालें उगाने में भी कर सकते हैं।

(ब) स्थान के अनुसार–

(i) **सामान्य शहरी गृहवाटिकाः–** शहर अथवा घनी आबादी वाले क्षेत्रों में जहां सीमित जगह रहती है, वहां गृहवाटिका बरामदे, छज्जों व छतों तक ही सीमित रहती है। छत पर कुछ हिस्सों में मिट्टी डालकर, सीमेंट या टाट/जूट के पुराने कट्टों में रेत भरकर उसे गृहवाटिका का रूप दिया जाता है तथा साथ–साथ गमलों में पुष्पीय पौधों के साथ–साथ कुछ सब्जियां भी उगाई जा सकती है तथा जिन घरों मे जगह पर्याप्त खुली जगह उपलब्ध है उनमें सब्जियों के साथ–साथ लॉन, फूल वाले पौधों, और कुछ फलदार पौधों को भी स्थान दिया जाता है।

(ii) **सामान्य ग्रामीण गृहवाटिका–** गांवों में गृहवाटिका के लिये प्रायः पर्याप्त खुली जगह मिल जाती है। वहां पर सब्जियों के साथ–साथ फलवृक्षों, दलहनी फसलों एवं मसाले वाली सब्जियो को प्राथमिकता दी जाती है। ग्रामीण गृहवाटिका में लॉन व पुष्प वाले पौधों को महत्व कम दिया जाता है।

(iii) **बड़े बंगलों की गृहवाटिका :** बंगलों में पर्याप्त स्थान होने की वजह से शोभाकारी पौधों और पुष्पो के अलावा व्यक्ति विशेष की रूची के अनुसार सब्जी तो लगाई ही जाती है साथ ही दालें व अनाज वाली फसलें भी उगाई जा सकती है।

5. विशिष्ट वाटिकाएं:–

इस प्रकार की वाटिकाओ के लिये अतिरिक्त एवं घर के बाहर जगह की जरूरत नहीं होती हैं। ये वाटिकाएं घर के कोनों, बरामदों अथवा छतों पर शोभाकारी के रूप में लगाई जाती है। इस प्रकार की वाटिकाएं कई प्रकार की होती है–

**अ. चट्टानी उद्यानः–** उद्यान के किसी भाग में प्राकृतिक तौर पर उपस्थित किसी चट्टान के इर्द–गिर्द या किसी वृक्ष आदि के नीचे चट्टानों और पत्थरों को एकत्र करके या विभिन्न आकार–प्रकार वाले पत्थरों से बनाई गई किसी दीवार के चट्टानी उद्यान में विकसित किया जा सकता है। इसके निर्माण में कल्पना और सौन्दर्य बोध का स्वाभाविक तालमेल रखना पड़ता है। मैदानी क्षेत्रों के लिये कैक्टस तथा गूदेदार पौधे, वर्बीना फलॉक्स जैस मौसमी फूल, लैण्टाना, आदि धूपदार स्थानों में तथा रोइओं डिसलकर, पैपरोमिआ, सैन्सेवेरिआ, जैब्रीना, ट्रैडेसकैन्शियस, मनीप्लांट आदि आंशिक एवं पूर्ण छायादार स्थानों के लिये उपयुक्त है।

ब. **मिनिएचर गार्डन** :– घर के आंतरिक भाग को सजाने के लिए कांच के बड़े जार या मिट्टी, कांच अथवा चीनी मिट्टी के तसलों में प्राकृतिक रूप से छोटे आकार वाले पौधों को कलात्मक ढंग से लगाकर एक लघु उद्यान का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इसमें लकड़ी प्लास्टिक अथवा रबड़ आदि के खिलौनों जैसी वस्तुओं का प्रयोग, तालाब एवं झूले आदि बनाने में प्रयोग किया जा सकता है। अनेक प्रकार के कैक्टस, गूदेदार पौधे, जंगली पुष्पी पौधे, छोटे, हाऊस प्लांट आदि ऐसे उद्यान बनाने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

स. **लटकती टोकरियां** :– कमरो, बरामदो तथा उद्यान में विशेष रूप से बनाये खेमों अथवा पेड़ो आदि में लटकाने के लिये लटकती टोकरियां तैयार की जाती है। ऐसी टोकरियां लकड़ी, बांस अथवा जंगरोधी धातु के तारों से बनाई जाती है। मिट्टी के पात्रों का भी इसमें इस्तेमाल किया जा सकता है। एक ही टोकरी में एक या कई प्रकार के पौधे लगाये जा सकते हैं। इसके लिए प्रायः घनी बढ़वार वाले ऐसे पौधों को चुना जाता है, जो टोकरी को पूरी तरह ढक लेते हैं। इसमें लटककर या फैलकर बढ़ने वाले प्रवृति के आकर्षित पत्तियो पुष्पों वाले पौधों का चुनाव करते हैं। जैसे ऐस्पेरेगस, ताड़, बिगोनिया, जिरेनियम नस्टरशियम, पिटूनिया, बौना गेंदा, ट्रेडेकैन्शिया आदि।

द. **जल वाटिका**:– खेती अयोग्य भूमि एवं अधिक पानी वाली जगहों पर ऐसी वाटिकाओं का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की जल वाटिकाएं सामान्यतः दो प्रकार की होती है :–

क. जहां खेती योग्य जमीन नहीं होती वहां सीमेंट–कंकरीट के टैंक बनाकर उन पर तार की जाली लगाई जाती है और जाली के ठीक नीचे तक उनमें पानी भर देते हैं। पानी में वांछित मात्रा में पोषक तत्व मिलाकर पौधों को इस प्रकार से लगाते है कि उनकी जड़ पानी में और शेष भाग जाली के ऊपर हवा में रहें। पौषक युक्त पानी में पौधों की जड़ों को हवा की भी आवश्यकता होती है, इसके लिये पंप से बीच–बीच में हवा दी जाती है। इस तरह की जल वाटिका को 'हाइड्रोपानिक्स' कहते हैं।

ख. झीलों, तालाबों व नदियों के लिये, घास, जलखुम्भी तथा लकड़ी के तख्तों की एक मोटी परत बनाई जाती है। परत का आकार इच्छानुसार छोटा–बड़ा रखा जा सकता है। ये परत पानी के ऊपर तैरती रहती है, यह परते पानी में बह ना जाए इसके लिये इनको खूंटी गाड़कर उन्हें रस्सी सें बांध देते हैं। इस प्रकार की वाटिकाओं में पानी की आवश्यकता नहीं होती है तथा इन तैरती परतों के ऊपर सब्जियां उगाई जा सकती है। इस प्रकार की जल वाटिकाएं कश्मीर आदि पर्वतीय क्षेत्र में देखने को मिलती है।

गृहवाटिका को सुनियोजित ढंग से लगाना चाहिये कि मात्रा, विविधता, पोषण और सौन्दर्यता हर रोज मिलती रहे। संक्षेप में गृहवाटिका को एक सुनिश्चित रूप अवश्य दिया जाना चाहिये।

**गृहवाटिका बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहियेः–**

1. गृहवाटिका चारों तरफ से सुरक्षित होनी चाहिये ताकि आवारा एवं घरेलू जानवर इसको नुकसान न पहुंचा सके। चारों ओर सुन्दर लतओं की भी बाड़ की जा सकती है।
2. गृहवाटिका की प्रत्येक क्यारी तक सिंचाई की नाली एवं मार्ग का होना भी आवश्यक है जिससे शस्य क्रियाएं करने में आसानी हो।
3. गृहवाटिका में रसोई, स्नान गृहों द्वारा बहते हुए पानी का सदुपयोग होना चाहिये। इसी पानी से फसलों, पौधों वं कम्पोस्ट के गडढों की सिंचाई करनी चाहिये। जिससे जल की बचत की जा सकती है।
4. घरेलूं कचरे एवं गंदगी से बचने के लिये कम्पोस्ट का गड्ढा होना चाहिये। जिससे गंदगी से बचा जा सकें और खाद भी उपलब्ध हो सके।
5. फलदार वृक्षों को हमेशा ऐसी दिशा में लगाये जिससे उनकी छाया से दूसरे पौधों को हानि न पहुंच सके। इनके साथ ही छोटी–सी पौधशाला भी होनी चाहिये।
6. गृहवाटिका में योजनाबद्ध तरीके से पुष्प, सब्जी, फलवृक्ष, झाड़ियों एवं लताओं को लगाया जाता है, जिससे उसकी शोभा में चार चांद लग सकते हैं।

***

# शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में खरीफ सब्जी उत्पादन

बीरबल, वी.एस. राठौड, एन. एस. नाथावत, सीमा भारद्वाज एवं जे.पी. सिंह
*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

भारतवर्ष में 21 वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही साथ सब्जी के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है। आज भारत की विश्व में सब्जी उत्पादन में दूसरा स्थान है। इस सफलता के बावजूद भी सब्जी की उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 225 ग्राम ही है। राष्ट्रीय पोषण अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद की संस्तुति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन लगभग 300 ग्राम सब्जी का सेवन करना चाहिए, जिसमें जड़, फल, पत्ती अन्य विभिन्न सब्जियों का समावेश हो। शाकीय फसलें विटामिन्स, लवण एवं फाइटो कैमिकल्स से परिपूर्ण होती है जो हमें सर्वोत्तम सुपाच्य एवं पोषक तत्वों से परिपूर्ण संतलित भोजन प्रदान करती है। पिछले दशक में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा सब्जियों के अनुसंधान एवं विकास में अति सराहनीय कार्य किया गया है जिसके तहत अधिक उपज देने वाली, गुणवत्तापूर्ण, रोग एवं कीटों से सहिष्णुता रखने वाली प्रजातियों के साथ–साथ अधिक उत्पादन देने वाली प्रौद्योगिकी का विकास किया है ।

**खीरा वर्गीय सब्जियों की उत्पादन तकनीकें :–**

**जलवायु सम्बन्धी आवश्यकता** : खीरावर्गीय सब्जियों की खेती के लिए नम, तेज गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। शरद ऋतु तथा पाला इन फसलों को बहुत हानि पहुंचाता है। करेला अपेक्षाकृत कम तापमान में भी उगाया जा सकता है, परन्तु लौकी में कम तापमान से पौधों की वृद्धि रूक जाती है। अधिक वर्षा होने पर लौकी की फसल में कीटों और बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है। खरबूजा की फसल के लिए उच्च तापमान और शुष्क जलावायु की आवश्यकता होती है, खासतौर पर फसल तैयार होते समय अधिक तापमान तथा गर्म और शुष्क हवा मिलने पर फलों में शर्करा की मात्रा बढती है।

**भूमि तथा उसकी तैयारी–** अच्छे जल निकास वाली दोमट अथवा बलुई दोमट भूमि इनकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। इन फसलो में अधिक पैदावार लेने के लिए यह आवश्यक है कि मिट्टी में जीवांश पदार्थ पर्याप्त मात्रा में हो तथा मिट्टी का पी.एच.मान 6 से 7 के मध्य हो। भूमि की तैयारी के समय ही 150 से 200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से सड़ी गोबर की खाद प्रयोग करनी चाहिए तथा खेत की मिट्टी पलट हल से गहरा जोतकर 3 से 4 जुताई देशी हल अथवा हैरो से करनी चाहिए, तत्पश्चात खेत में पाटा चलाकर भूमि को समतल कर लेना चाहिए।

**उन्नतशील किस्में** : केन्द्रीय बीज समिति द्वारा खीरावर्गीय सब्जियों की निम्नलिखित किस्मे अधिसूचित की गई है:–

| क्र.स. | सब्जी | उन्नतशील किस्में |
|---|---|---|
| 1. | करेला | पूसा दौ मोसमी, अर्काहरित, कोयम्बटूर लौग, फैजाबाड़ी बरहमासी |
| 2. | लोकी | पूसा समर पौलिफिक लौग और राउण्ड, अर्काबहार,पूसा मेधदूत |
| 3. | धारीदार तोरई | पूंसा मदार, अर्का सुमीत, अर्का सुजात,कल्याणपुर धारीदार |
| 4. | घीया तोरई | पूजा स्नेहा, पूसा सुप्रिया, स्वर्णप्रभा, कलयाणपुर चिकनी |
| 5. | खरबूजा | हरा मधु, पूसा मधुरस, पूसा रसराज, अर्काजीत, अर्का राजहंस, |
| 6. | कद्दू | अर्का सूर्यमुखी, अर्काचन्दन, पूसा उज्जवल, कामी धवल, को–1 |
| 7. | तरबूज | शुगर बेबी, अर्का ज्योति, पूसा बेदना, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, |
| 8. | खीरा | पूसा संयोग, सोलन ग्रीन, स्वर्ण अगेती, स्वर्ण शीतल |
| 9. | टिण्डा | अर्का टिण्डा, पंजाब टिण्डा, बीकनेरी ग्रीन, हिसार टिण्डा |
| 10. | ककड़ी | ए.एच.एस.–10, ए.एच.एस.–82 |

**खाद एवं उर्वरक आवश्यकताएं:–** सामान्यतः मिट्टी की जांच के आधार पर ही खाद एवं उर्वरकों की मात्रा प्रयोग करनी चाहिए, लेकिन यदि किसी कारणवश मिट्टी की जांच न हो सके तो 60–80 किग्रा नत्रजन, 80–100 किग्रा फास्फोस, 40–50 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। गोबर की खाद का प्रयोग भूमि की तैयारी के समय तथा इसके अतिरिक्त नत्रजन की एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देनी चाहिए शेष बची नत्रजन को दो बराबर भागों में बांटकर बुआई के लगभग 25–30 दिन बाद एव फूल आते समय टापड्रेसिंग के रूप में पौधे के चारों ओर देनी चाहिए।

**बुवाई के समय, बीज दर एवं दूरी :–** बुआई का समय, बीज की मात्रा तथा पौध अन्तराल सारणी 2 में दिया जा रहा है।

| क्र.स. | फसल | बुआई का समय | बीज की दर / है. | पौध अन्तराल |
|---|---|---|---|---|
| 1. | करेला | फरवरी मार्च जनु–जुलाई | 5–6 किग्रा. | 1.25 X 0.5 मी. |
| 2. | लौकी | फरवरी– मार्च, जुन जुलाई | 4–5 किग्रा. | 3.00 X 0.75 मी. |
| 3. | तोरई | जनवरी–फरवरी, जुन–जुलाई | 4–6किग्रा. | 1.5–2.0 X 0.50–0.75 मी. |
| 4. | खरबूजा | जनवरी– मार्च | 3–4 किग्रा | 1.5 X 0.60 मी. |
| 5. | कददू | फरवरी–मार्च– जुलाई | 4–5 किग्रा. | 2.0–3.0 X 0.75 मी |
| 6. | तरबूज | फरवरी–मार्च | 4–5 किग्रा. | 2.0 X 1.0 मी. |
| 7. | खीरा | फरवरी– मार्च, जुन जुलाई | 2–2.5 किग्रा. | 1.5–2.0 X 0.5 मी. |
| 8. | टिण्डा | फरवरी– मार्च, जुन जुलाई | 4–5 किग्रा | 1.5–2.0 X 0.5 मी. |
| 9. | ककड़ी | फरवरी– मार्च, जुन जुलाई | 2.0 किग्रा | 1.5 X 0.5 मी. |

**सिंचाई एंव जल निकास :** सिचाई की आवश्यकता भूमि को मौसम की किस्म के अनुसार तय करनी पडती है। वर्षाकालीन सिंचाई की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती लेकिन लम्बे समय तक वर्षा नहीं होने पर 8 से 10 दिन के अन्तराल पर तथा तापक्रम बढ़ने के साथ–साथ अन्तराल कम करते जाना चाहिए। तथा खेत जल निकासी की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए।

**खरपतवार नियन्त्रण :** सामान्यतः सब्जी की खेती को खरपतवार नाशी रसायनों से मुक्त रखना चाहिए। बेलों के फैलने तक 2–3 बार निराइ एवं गुडाई करके फसल को खरपतवारों से मुक्त रखा जा सकता है।

**बेलों को सहारा देना :** फलों को सड़ने से बचाने एवं अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए बेलों को सहारा देना चाहिए। प्रायः वर्षा ऋतु की फसल को सहारा देने की आवश्यकता होती है। क्योंकि फल भूमि पर नमी के सम्पर्क में आकर सड जाते हैं इसके लिए बांस के डण्डे पर रस्सियां बांधकर उनके ऊपर बेलों को चढाते हैं। ग्रीष्म ऋतु की फसल को जमीन पर ही फलने देते हैं।

**फलों की तुड़ाई :** उचित आकार प्राप्त करने के बाद ही फलों की तुड़ाई शुरू कर देनी चाहिए। इसके लिए फलों को नरम अवस्था में किसी तेज धार वाले चाकू से तोड़ना चाहिए। फल तोड़ने में देरी होने पर बीज सख्त एवं गुददा सुखने लगता है और उसका बाजार भाव कम मिलता है, जिससे कृषक को आर्थिक नुकसान उठाना पडता है। फलों को तोड़ने के बाद ग्रेडिंग करके ही बाजार में बेचना चाहिए। ताकि अच्छे भाव मिल सके और खराब फलों की भी छंटाई हो सके। फसलों के पैदावार उनके शस्य प्रबन्ध एवं किस्म पर आधिरत है।

**दलहनी सब्जियों की उत्पादक तकनीके :** लोबिया, सेम एवं ग्वार यहां की मुख्य फसल है।

**जलवायु :** लोबिया गर्मी व सूखे के प्रति सहनशील ग्रीष्मकालीन फसल है। अधिक बरसात एवं जल जमाव इसकी खेती के लिए हानिकारक है। अच्छे उत्पादन के लिए 29–35° तापमान होना चाहिए। सेम से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए छोटे दिन तथा कुछ ठण्डा मौसम उपयुक्त रहता है इसकी अधिकांश किस्में 18–30° तापमान पर अच्छी उपज देती हैं ग्वार मुख्य रूप से उष्ण जलवायु की फसल है, इसे गर्म मौसम की आवश्यकता होती है।

**भूमि एवं उसकी तैयारी :** तीनों ही फसलों के लिए बलुई– दोमट भूमि उपयुक्त है, लोबिया को पी.एच. मान. 5.5–6.5, सेम को 5.0–7.8 पी.एच. मान तथा ग्वार को 6.0–8.0 पी.एच.मान वाली भूमि में आसानी से उगाया जा सकता है। ग्वार लवणीयता तथा आंशिक रूप से क्षारीयता सहन कर लेता है। खेत की तैयारी के लिए एक गहरी जुताई करते हैं तथा एक जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा अवश्य लगाना चाहिए ताकि नमी संरक्षित रह सके। उन्नतशील किस्में, बुवाई का समय बीज दर तथा पौध अन्तराल को नीचे सूचीबद्ध किया जा रहा है।

| क्र.सं. | सब्जी | उन्नतशील किस्में | बुवाई का समय | बीज दर किग्रा./हैं | दूरी (सेमी.) कतार X पौधा |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | लोबिया | अर्क समृद्धि, अर्का सुमन, स्वर्ण सुफला, काशी कंचन, पूसा फाल्गुनी, पूसा बरसाती | बसन्तः फरवरी–मार्च वर्षा : जून–जुलाई | 12–20 | 40-50 x 10-50 |
| 2. | सेम | स्वर्ण उत्कृष्ट, अर्का विजय, सी.ओ. 1 व 2, जवाहर सेम 37 पूसा सेम – 2, पूसा सेम–3 | जुलाई–अगस्त | 20–30 | 60 x 30 |
| 3. | ग्वार | पूसा मौसमी, दुर्गा बहार, पूसा सदाबहार, पूसा नवबहार, आई.सी. 11521 | बसन्तः फरवरी–मार्च वर्षा : जून–जुलाई | 30–40 | 45 x 25 |

**सिंचाई एवं जल प्रबन्धन**– बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। फूल आने से पूर्व सिचांई करना फलियों के निर्माण में सहायक है। दूसरी सिंचाई फलियां लगने के बाद करनी चाहिए। सिंचाई में जल की मात्रा एवं अन्तराल किसी स्थान विशेष के मौसम एवं मृदा पर निर्भर करती है। हल्की मृदा में भारी मृदा की अपेक्षा हल्की सिंचाई के अन्तराल पर करनी चाहिए। इसी प्रकार यदि वर्षा ऋतु में सामान्यतः वर्षा का वितरण समान हो तब सिचांई की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। लेकिन ग्रीष्म ऋतु में 5–6 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना आवश्यक है।

**खाद एंव उर्वरक** : लोबिया, सेम एवं ग्वार तीनों ही दलहनी फसलें हैं अतः इनको अधिक नत्रजन की आवश्यकता नहीं पड़ती। अच्छी पैदावार के लिए फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा और नत्रजन की आधी मात्रा, अन्तिम बुवाई के समय खेत में एक समान रूप से डालकर पाटा लगा देना चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा की बुवाई के 30–35 दिनों बाद टाप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए तथा दूसरा टापड्रेसिंग स्प्रे बुवाई के 55–60 दिन बाद करना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजों को राइजोबियम कल्चर से उपचारित कर लेना चाहिए। बीजो कोउपचारित करने के लिए 1.5 किग्रा राइजोबियम कलचर प्रति 100 किग्रा बीज की दर से आवश्यकता पड़ती है। बीजों को कल्चर से शोधित करने के लिए 10 प्रतिशत गुड़ का घोल बनाकर थोड़ी देर तक गर्म करके ठण्डा करले, इसके पश्चात राइजोबियम कल्चर को घोल में मिलाकर बीजों को उपचारित करके छाया में सुखा लें तथा उसी दिन खेत में बुवाई करे। लोबिया, सेम एवं ग्वार के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा नीचे सारणी में दी जा रही है।

| क्र.सं. | फसल का नाम | गोबर की खाद क्वि./प्रति है. | नत्रजन (किग्रा/है.) | फास्फोरस (किग्रा. / है.) | पोटाश (किग्रा./है.) |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | लोबिया | 200–250 | 30–40 | 50–60 | 50 |
| 2. | सेम | 100–150 | 20–30 | 40–50 | 40–50 |
| 3. | ग्वार | 100–150 | 10–12 | 50–70 | 40–50 |

**शस्य क्रियाएं एवं खरपतवार नियन्त्रण** :– फसल की प्रारम्भिक अवस्था में निराई– गुड़ाई करने के पश्चात कार्बनिक मल्व जैसे पुआल, भूसा, या अन्य पादप अवशेष को खेत में बिछा देने से खरपतवारों का नियन्त्रण होने के साथ–साथ कई अन्य लाभ जैसे मृदा की नमी का सरंक्षित रहना, मृदा का तापमान नियन्त्रण रहना, खरपतवारों को न उगने देना, कीड़ों– मकोड़ों के सीधे मृदा नमी के सम्पर्क में रहने से कीड़ों–मकोंड़ों का प्रकोप कम हो जाता है जिससे इनके द्वारा होने वाला नुकसान स्वतः नियंत्रित हो जाता है।

**तुड़ाई एवं भण्डारणः**– लोबिया की अगेती प्रजातियों में हरी फलियां लगभग 40–45 दिनों में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती है। फलियों की तुड़ाई कोमल अवस्था में कम अन्तराल पर रेशा बनने से पूर्व करनी चाहिए। देर से तुड़ाई करने पर फलियों में रेशे पड़ जाते हैं। जिससे बाजार में कम कीमत मिलती है। पूरे फसल काल में 8–12 तुड़ाई होती है। हरी फलियों की तुड़ाई उपरान्त छायादार ठण्डे स्थानों पर रखना चाहिए। हर फलियों को ताजा बनाये रखने के लिए उन पर बीच– बीच में पानी का छिड़काव कर सकते है। सेम की हरी फलियों को 0–1. 6 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तथा 85–90 प्रतिशत सापेक्षिक आद्रता पर 2–3 सप्ताह तक रखा जा सकता हैं।

फलवर्गीय एवं पत्तिदार सब्जियों की उत्पादन तकनीकें : इन सब्जियों की उत्पादन तकनिकों को संक्षिप्त में तालिकाबद्ध रूप से नीचे दिया जा रहा है।

| क्र. स. | सब्जी का नाम | उन्नत किस्में | बुवाई का समय | बीज दर किग्रा./है | दूरी (मीटर) कतार x पौधा | खाद व उर्वरकों की मात्रा (किग्रा/है.) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | टमाटर | पूसा हाईब्रिड, रश्मी, सोनाली, पूसा रूबी, अर्का विकास, हिसार अरूण | जून–जुलाई | 4–5 सामान्य किस्मे 1.5–2.0 संकर किस्मे | 0.75 x 0.75 | गोबर की खाद 150–250 नत्रजन 120, फास्फोरस – 80, पोटाश – 60 |
| 2. | बैंगन | पूसा परपल लौंग एवं कलस्टर, पूसा क्रान्ति पूसा परपल राउण्ड, एच–4 | फरवरी–मार्च जून–जुलाई | 4–5 | 0.60 x 0.07 | गोबर की खाद 150–250 नत्रजन 80, फास्फोरस – 30, पोटाश – 60 |
| 3. | मिर्च | एन.पी.–46, पूसा ज्वाला मथानिया लोंग, पन्त सी–1 | फरवरी–मार्च मई–जून | 1–1.5 | 0.60 x 0.45 | गोबर 150–250, नत्रजन 120, फास्फोरस–70, पोटाश – 48 |
| 4. | भिण्डी | पूसा सावनी, परभनी क्रान्ति, वर्षा, उपहार | फरवरी–मार्च जून–जुलाई | 16–20 10–12 | 0.30 x 0.15 0.60 x 0.30 | गोबर की खाद 150–250 नत्रजन 80, फास्फोरस – 30, पोटाश – 60 |
| 5. | चौलाई पत्तीवाली सब्जी | बड़ी चौलाई, छोटी चौलाई अर्का सुगना, सी.ओ–1 | फरवरी–मार्च जून–जुलाई | 2.0–2.5 | 0.3 x 0.20 | गोबर की खाद 100–150 नत्रजन 30, फास्फोरस – 40, पोटाश – 30 |

***

# शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो में रबी सब्जी उत्पादन

बी.आर.चौधरी

*केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

भारत एक प्रमुख सब्जी उत्पादक देश है जिसका विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। संतुलित आहार में सब्जियों का एक महत्वपुर्ण स्थान है। शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में उच्च तथा निम्न तापमान, लवणीय जल, मृदा का अधिक पी.एच., पानी की कमी तथा तेंज आंधी सब्जी उत्पादन में बाधक तत्व है फिर भी इन क्षेत्रों में वैज्ञानिक तकनीके जैसे उचित फसल का चुनाव, उन्नत तथा संकर किस्मों का चुनाव, टपक सिचांई पद्धति, कम लागत वाले हरित गृह, वायु अवरोधक पट्टी, समुचित उर्वरक प्रबन्धन, समन्वित खरपतवार, कीट तथा रोग नियन्त्रण अपनाकर रबी सब्जियों कि खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

**किस्म का चुनाव :**

अधिक उपज के लिए उपयुक्त नवीन उन्नतशील तथा संकर किस्मों की बुआई करनी चाहिए।

| फसल | उन्नत किस्में | संकर किस्में |
|---|---|---|
| टमाटर | पूसा सदाबहार, पूसा गौरव, पूसा शीतल, पूसा उपहार, पूसा–120, हिसार अरूण, पूसा रूबी, पूसा अर्ली ड्बार्फ, पंजाब छवारा, पूसा रोहिणी। | पूसा हाईब्रिड–1, पूसा हाईब्रिड–2,पूसा हाईब्रिड–4, पूसा हाईब्रिड–7 |
| बैगन | पूसा क्रान्ति, पूसा सम्राट, पूसा उपकार, पूसा अकुर, पूसा बिन्दु, पूसा अनुपम, पूसा उत्तम। | पूसा हाईब्रिड–5, पूसा हाईब्रिड–6,पूसा हाईब्रिड–7 |
| मिर्च | पूसा ज्वाला, पूसा सदाबहार, पंजाब लाल, पजांब सुर्ख, मथानिया लोंग। | सी.एच.–1,सी.एच.–3 |
| फुलगोभी | पूसा दीपाली, पूसा कातकी, पूसा हिमज्योति, पूसा स्नोबाल, पूसा मेघना। | पूसा हाईब्रिड –2 |
| पत्तागोभी | गोल्डन एकर, प्राईड ऑफ इन्डिया, पूसा ड्रम हेड, पूसा अगेती, पूसा मुक्ता। | |
| गाजर | पूसा केसर, पूसा यमदागनी, पूसा मेघाली। | |
| मूली | पूसा चेतकी, पूसा हिमानी, पूसा रेश्मी, पूसा देशी। | |
| पालक | पूसा ज्योति, आलग्रीन जोबनेर ग्रीन, पूसा हरित पूसा भारती। | |
| प्याज | पूसा रेड, एग्रीफाउन्ड डार्क रेड, एग्रीफाउन्ड लाइट रेड, पंजाब रेड राउन्ड, पूसा माधवी, पूसा व्हाईट राउण्ड। | |
| लहसुन | एग्रीफाउण्ड व्हाईट, एग्रीफाउण्ड पार्वती, जी.0–1, जी–50, जी–51 | |
| मटर | अर्किल, आजाद मटर–1, आजाद मदर – 3, पूसा प्रगति | |

## बीज दर, बुआई की दूरी तथा उपज

| फसल | बीज दर (प्रति है.) बीज | बुआई की दूरी (से.मी) | | अनुमानित उपज (कु. प्रति है.) |
|---|---|---|---|---|
| | | कतार से कतार | पौधे से पौधा | |
| टमाटर | 400–500 ग्राम (सामान्य किस्में) 150–200 ग्राम सकर किस्में | 60 | 45 | 300–350 |
| बैंगन | 400–500 ग्राम | 60 | 45–60 | 250–300 |
| मिर्च | 1–1.5 किलोग्राम | 60 | 30–45 | 75–100 |
| फूलगोभी | 400–500 ग्राम (पछेती) | 60 | 45 | 200–300 |
| पत्तागोभी | 400 ग्राम (पछेती) | 60 | 45 | 200–300 |
| गाजर | 8–10 किग्रा. | 30 | 10 | 200–300 |
| मूली | 10 किग्रा. | 30 | 10 | 300–400 |
| पालक | 500–600 किग्रा. | 15 | 7–8 | 60–100 |
| प्याज | 5–6 किग्रा. | 30 | 8–10 | 150–250 |
| लसुन | 80–100 किग्रा. | 30 | 8–10 | 50–80 |
| मटर | 25–30 किग्रा. | 20 | 5–8 | 50–200 |

**बुआई :**

रबी सब्जियों की बुआई अक्टूबर–नवम्बर माह में फसल के प्रकार, बाजार की मांग के अनुसार तथा किस्म के आधार पर करते हैं। मूली, गाजर, पालक तथा मटर की बुआई सीधी खेत में करनी चाहिए। प्याज, टमाटर वर्गीय तथा गोभी वर्गीय सब्जियों की बुआई के लिए पहले पौधे तैयार करते हैं। प्याज की पौध 6–7 सप्ताह तथा टमाटर, बैंगन, मिर्च व गोभी की पौध 4 सप्ताह में रोपाई के योग्य हो जाती है। सब्जियों की बुआई/रोपाई हमेशा कतारों में उचित दूरी पर करनी चाहिए। रबी सब्जियों की नर्सरी सितम्बर माह में तैयार करते हैं।

**नर्सरी तैयार करना :** पौध तैयार करने के लिए 1 मीटर चौड़ी, आवश्यकता के अनुसार लम्बी तथा 15–20 सेमी. ऊंची क्यारियां बनाते हैं। दो क्यारियों के बीच 30 सेमी स्थान छोड़ देना चाहिए ताकि देखरेख करने में सुविधा हो। प्रति वर्ग मीटर में 2–3 किग्रा गोबर की खाद मिलाकर मिट्टी को भूरभूरी कर लेते हैं क्यारी की चौड़ाई के समानान्तर 5 सेमी की दूरी पर 0.5 सेमी गहरी पंक्ति बनाकर बीज की बुआई करनी चाहिए। बुआई के बाद क्यारी को घास फूस से ढक कर पानी दे देते हैं। अंकुरण होने पर घासफूस को हटा देना चाहिए। समय–समय पर खरतवारों को हाथ से निकालना चाहिए। आर्द्रगलन रोग के प्रकोप से बचने के लिए पौध शाला में केप्टान या थीरम (2.5ग्राम/ली. पानी) से नर्सरी की क्यारी को गीला कर देना चाहिए। नर्सरी से पौध उखाड़ने से पूर्व सिंचाई करनी चाहिए ताकि जड़ों को नुकसान न हो। पौधे की रोपाई शाम के समय करनी चाहिए तथा रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए।

**खाद व उर्वरक :**

भरपूर उपज प्राप्त करने के लिए खाद एवं उर्वरकों की संतुलित मात्रा के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग भी करना चाहिए।

| फसल | उर्वरक (कि. प्रति है.) | | | नत्रजन प्रयोग का समय |
|---|---|---|---|---|
| | नत्रजन | फास्फोरस | पोटाश | |
| टमाटर | 120 | 80 | 60 | चौथाई मात्रा रोपाई के एक माह बाद तथा चौथाई मात्रा फूल आते समय |
| बैगन | 80 | 80 | 60 | चौथाई मात्रा रोपाई के एक माह बाद तथा चौथाई मात्रा फूल आते समय |
| मिर्च | 80 | 60 | 60 | चौथाई मात्रा रोपाई के एक माह बाद तथा चौथाई मात्रा फूल आते समय |
| फुलगोभी, पत्तागोभी | 120 | 80 | 60 | चौथाई मात्रा रोपाई के एक माह बाद तथा चौथाई मात्रा रोपाई के 6 सप्ताह बाद |
| मुली | 60 | 40 | 40 | आधी मात्रा मूली बनते समय देकर मिट्टी चढाना चाहिए। |
| प्याज | 100 | 60 | 80–100 | चौथाई मात्रा रोपाई के 30 दिन बाद तथा चौथाई मात्रा रोपाई के 45 दिन बाद |
| लहसुन | 100 | 50 | 80–100 | चौथाई मात्रा रोपाई के 30 दिन बाद तथा चौथाई मात्रा रोपाई के 45 दिन बाद |
| गाजर | 60 | 40 | 100 | चौथाई मात्रा रोपाई के 30 दिन बाद तथा चौथाई मात्रा रोपाई के 45 दिन बाद |
| मटर | 30 | 40 | 40 | आधी मात्रा बुआई के 1 माह बाद |
| पालक | 60–80 | 40 | 40 | प्रत्येक कटाई के बाद 25 किग्रा/है |

उर्वरकों की उपरोक्त मात्रा के अतिरिक्त खेती की तैयारी के समय 200–250 कु. अच्छी सड़ी गली गोबर की खाद प्रति है. की दर से खेत में मिलाना चाहिए। सभी सब्जियों में नत्रजन की आधी मात्रा तथा फासफोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अन्तिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा को सारणी के अनुसार देना चाहिए। नत्रजन की कमी होने पर फूलगोभी के फूल छोटे आकार के बनते हैं।

मटर के बीज को नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले राइजोबियम कल्चर से भी उपचारीत करना चाहिए। कल्चर का उपचार हमेशा कवकनाशी के उपचार के बाद करना चाहिए। 1 किग्रा बीज के लिए एक पैकेट (200 ग्राम) राइजोबियम कल्चर पर्याप्त होता है। एक पैकेट कल्चर को आधा लीटर पानी में घोलकर 50 ग्राम गुड मिला देते हैं। प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्व, उनसे होने वाले विकार तथा उनका निदान निम्न प्रकार है।–

| सूक्ष्म तत्व | विकार | निदान |
|---|---|---|
| बोरोन | 1. टमाटर के फल फटना<br>2. फूल गोभी के फूल का भूरा होना<br>3.गोभी वर्गीय सब्जियों का तना खोखला होना | 0.3–0.4 प्रतिशत बोरेक्स का फसल पर छिडकाव |
| मोलिब्डेनम | गोभी वर्गीय सब्जियों की पत्ती का सकड़ा होना। | 0.1–0.3 प्रतिशत अमोनियम मोलिब्डेट का छिड़काव |
| मैगनीज | मटर की पत्तियों पर मार्श धब्बे बनना | 0.2–0.3 मैगनीज सल्फेट का छिड़काव |

## सिंचाई प्रबन्धन

शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो में सब्जियों की समयबद्ध सिंचाई अतिआवश्यक है। इन क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण सिंचाई की टपक पद्धति सर्वोत्तम मानी जाती है। इस विधि में पानी की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है एवं पानी का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। सब्जियों की सिंचाई के लिए 12–16 मि.मि. आकार के लेटरल पाईप उपयुक्त रहते हैं। ड्रिपर की क्षमता 4 ली/घण्टा उपयुक्त रहती है। इस विधि से पानी बूंद–बूंद करके प्रत्येक पौधे की जड़ों के पास ड्रिपर के माध्यम से दिया जाता है। इस विधि में पानी 1–2 दिन के अन्तराल पर देना चाहिए ताकि मृदा में नमी उपयुक्त स्तर तक बनी रहे तथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े। इस विधि से पानी में घुलनशील उर्वरक तथा मृदा जनित कीटों व रोगों को नियंत्रित करने वाले रसायनों का प्रयोग भी आसानी से कर सकते हैं।

## खरपतवार प्रबन्धन

सब्जियों की खेती में खरपतवार एक चुनौतीपूर्ण समस्या है इनसे सब्जियों की पैदावार में लगभग 20–50 प्रतिशत तक कमी आती है तथा गुणवत्ता भी प्रभावित होती है जिससे बाजार भाव कम मिलता है। अधिक तथा गुणवत्तायुक्त सब्जी प्राप्त करने के लिए खरपतावारों का उपयुक्त समय पर नियंत्रण करना आवश्यक है।

| | फसल | खरपतवार नियंत्रण का उपयुक्त समय |
|---|---|---|
| 1. | गोभी वर्गीय सब्जियां | रोपाई के 2–6 सप्ताह तक |
| 2. | टमाटर | रोपाई के 2–6 सप्ताह तक |
| 3. | मिर्च | रोपाई के 4–9 सप्ताह तक |
| 4. | प्याज | रोपाई के 3–9 सप्ताह तक |
| 5. | मटर | बुआई के 2–6 सप्ताह तक |

**खरपतवार नियंत्रण हेतु निम्नलिखित समन्वित उपाय करना चाहिए :**

1. खेत की अच्छी जुताई करके बुआई/रोपाई करनी चाहिए।
2. खेत में पौधों की संख्या आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिए।
3. सन्तुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए ।
4. बुआई/रोपाई के 30–40 दिन बाद तथा 45–50 दिन बाद निराई गुडाई करके खरपतावारों को निकाल देना चाहिए ।
5. बुई, खीप इत्यादि से मल्चिंग करना चाहिए ।
6. रासायनिक खरपतवारनाशी जैसे फलूक्लोरिन (1.0 किग्रा सक्रिय पदार्थ/है.) बुआई/रोपाई के पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। पेन्डीमेथालिन (1.0–1.5 किग्रा सक्रिय पदार्थ/है.) को बुआई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व खेत में छिड़काव चाहिए।

## एकीकृत कीट प्रबन्धन

इस योजना के तहत सब्जियो में कम से कम कीटनाशी रसायनों का प्रयोग करके कीटों का नियंत्रण किया जाता है। इसके प्रमुख घटक निम्नलिखित है।

1. कीट अवरोधी एवं सहनशील किस्मों की बुआई करनी चाहिए।
2. सब्जियों की बुआई/रोपाई ऐसे समय करें जबकि पौधें की नाजुक अवस्था एवं कीट की निष्क्रिय अवस्था समानान्तर हो।
3. ग्रीष्मकाल मे खेत की गहरी जुताई करके कीटों को सुषुप्तावस्था में ही नष्ट कर देना चाहिए।
4. अन्तः फसल पद्धति अपनाकर कुछ कीड़ो का प्रकोप कम किया जा सकता है।
5. कीड़ों को आकर्षित करने वाली दूसरी फसलें लगानी चाहिए। गोभी की हरी सूण्डी को आकर्षित करने के लिए सरसों की बुआई करनी चाहिए। टमाटर के फल छेदक के लिए गेंदा की बुआई करनी चाहिए।
6. ट्राईकोगामा (परजीवी कीट) को टमाटर के फल छेदक नियंत्रण हेतु 250000/है. की संख्या में प्रयोग किया जा सकता है।
7. सुरक्षित रसायनों का छिड़काव करना चाहिए।

| कीटनाशक | प्रति लीटर पानी में डाली जाने वाली मात्रा | नियंत्रित होने वाले कीट | फसल |
|---|---|---|---|
| इमिडाक्लोप्रिड | 0.3 मिली | थ्रिप्स, माहू, सफेद मक्खी | बैंगन, टमाटर, मिर्च, मटर |
| साइपरमेथिन | 0.5 मिली | तना एव फल छेदक | बैगन |
| पालीट्रिन सी | 0.7 मिली | हरी सूण्डी | फूलगोभी, पत्तागोभी |
| प्रोपराजाईट | 2.0 मिली | माईट | मिर्च, बैंगन, टमाटर |
| कार्बोफयूरान | 30 किग्रा.(भूमि उपचार) | छेदक, सूत्र कृमि | बैगन, टमाटर, मिर्च |

## एकीकृत रोग प्रबन्धन

सब्जियों को रोगों से बचाने के लिए निम्नलिखित एकीकृत उपाय अपनाने चाहिए।

1. गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए
2. हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए।
3. उपयुक्त फसल चक्र उपनाना चाहिए।
4. रोग सहनशील किस्मों को उगाना चाहिए।
5. पौधशाला की भूमि का सौर्यीकरण करना चाहिए। इसके लिए पौधशाला की मिट्टी को 200 गेज की पारदर्शी पॉलीथीन से मुई–जून माह में 4–6 सप्ताह तक ढक देना चाहिए।

6. बुआई से पूर्व बीजों को ट्राईकोडर्मा (4–5 ग्राम/किग्रा बीज) या बाविस्टीन (2 ग्राम/किग्रा बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।
7. 5–6 किग्रा. ट्राईकोडर्मा /है. की दर से गोबर की खाद में मिलाकर भूमि उपचार करना चाहिए।
8. खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए।
9. मल्च का प्रयोग करना चाहिए।
10. विषाणु रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
11. खेत में 25 क्विंटल/है. की दर से नीम की खली डालना चाहिए।
12. फसल की आवश्यकता के अनुसार ही सिंचाई करनी चाहिए।
13. विषाणु जनित रोग जैसे मिर्च व टमाटर का पर्ण कुंचन विषाणु सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। अतः इसकी रोकथाम के लिए रोपाई के समय पौधों की जड़ों को इमिडाक्लोप्रीड (2.5 मिली/ली. पानी) में डुबोकर रोपाई करनी चाहिए तथा खड़ी फसल में इसी दवा को 0.3 मिली/ली पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

खड़ी फसल में निम्नलिखित रसायनों का छिड़काव करना चाहिए।

| रसायन | रसायन की मात्रा | नियत्रित होने वाले रोग | फसल |
|---|---|---|---|
| बाविस्टीन | 1–2 ग्राम लीटर पानी | कॉलर एवं जड़ सड़न,पर्णदाग आर्द्रगलन | टमाटर, बैंगन, मिर्च, गोभी |
| डायथेन एम–45 | 2–2.5 ग्राम लीटर पानी | मृदुरोमिल, एन्थेकनोज, अगेती व पछेती झुलसा, | टमाटर, मिर्च, बैंगन, गोभी मूली, प्याज परपल ब्लांच |
| कैराथेन | 1–1.5 ग्राम लीटर पानी | चूर्णी फफूंद | मिर्च, बैंगन, सेम, मटर |
| ब्लाइटाक्स | 3 ग्राम/लीटर पानी | फल गलन, झुलसा, पर्णदाग, डाउनी मिल्ड्यू | मिर्च टमाटर, बैंगन |
| रिडोमिल एम जेड | 2 ग्राम/लीटर पानी | पछेती झुलसा, मृदुरोमिल | टमाटर, आलू, मटर |

इस प्रकार शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में रबी सब्जियों की खेती वैज्ञानिक पद्धति से करके अधिक उपज तथा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

***

# बीजीय मसाला फसलोत्पादन- महत्व व उत्पादन तकनीक

वी.एस. राठौड़, बीरबल, जे.पी. सिंह, एन.एस.नाथावत, सीमा भारद्वाज एवम् बी.एम. यादव

*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

विगत दशकों में कृषि व्यवसाय में आमुलचोल परिवर्तन हुए हैं। 1960–70 के दशक में खाद्यान फसलों के उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया तथा 1990 तक खाद्यान्नों के उत्पादन मे विश्वभर में प्रशंसनीय वृद्धि हुई। 1990 के दशक में एक आर्थिक मुक्त व्यापार व्यवस्था स्थापित होने के बाद कृषि उत्पादों के व्यापार में नवीन आयाम तथा दिशाएं निर्धारित हो गई। मुक्त व्यापार व्यवस्था में फसलोत्पादन की आर्थिकी प्रभावित हुई तथा सारांश रूप से यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के इस काल में क्षेत्र विशेष मे होने वाली फसलों में निहित लाभ वैश्विक मांग व कीमतों से प्रभावित होती है। इस नवीन व्यापारिक व्यवस्था में घरेलू आवश्यकताओं की आपूर्ति करने वाले फसलोत्पादन के स्थान पर व्यापारिक फसलोत्पादन को बढ़ावा मिला। राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में प्रदान बीजीय मसालों का उत्पादन इस नवीन व्यापारिक व्यवस्था में फसलोत्पादन का ज्यादा आय अर्जित करने वाला एक मुख्य विकल्प है। हमारे देश में उत्पन्न होने वाले बीजीय मसालों में जीरा, धनिया, मैथी, सौफ तथा अजवायन मुख्य है। यह मसाले भोजन में सुवास पैदा करने के साथ औषधीय गुणधर्मों के कारण मानव आहार का महत्वपूर्ण घटक है। इसके साथ–साथ यह फसलें विदेशी मुद्रा अर्जन का एक अहम् हिस्सा है।

भारत में उत्पादित होने वाले कुल बीजीय मसालों के उत्पादन में से लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा राजस्थान व गुजरात राज्यों में पैदा होता है तथा इन राज्यों को "बीजीय मसालों का कटोरा" कहा जाता है.।

**बीजीय मसालों की खेती के कुछ महत्वपूर्ण लाभ निम्न हैं–**

1. यह मानव आहार के मुख्य घटक हैं।
2. बीजीय मसाले औषधीय गुण वाले होते हैं जिनका उपयोग स्वास्थ्यवर्धक होता है।
3. विदेशों में अत्यधिक मांग होने के कारण इनका बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है जिससे विदेशी मुद्रा का अर्जन किया जा सकता है।
4. इन फसलों की जल मांग प्रमुख धान्य फसलों को अपेक्षाकृत कम होती है।
5. इन फसलों के परिवहन, विपणन तथा प्रसंस्करण में रोजगार सृजन तथा इन उद्योगों के विकास की अत्यधिक संभावनाएं हैं।
6. राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की जलवायु इन फसलों के उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद करने के लिए उपयुक्त है।

7. इन फसलों का लाभ लागत अनुपात ज्यादा होता है।
8. यह फसलें कम उर्वरा भूमि पर भी आसानी से हो सकती है।
9. यह फसलें अल्पावधि वाली होती है, जिससे यह सघन फसलोत्पादन के लिए उपयुक्त है।
10. राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में प्रचलित फसल प्रणालियो में इनको आसानी से समावेश किया जा सकता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों को देखते हुए यह फसलें राजस्थान के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों के लिए फसल विविधकरण का एक आर्थिक संभावनाओं से परिपूर्ण विकल्प है। मुख्य बीजीय मसालों को नवीन उत्पादन तकनीकों का वर्णन निम्न है–

## (अ) जीरा

जीरा राजस्थान की एक मुख्य बीजीय मसाला वाली फसल है। इसका वानस्पतिक नाम क्यूमिनम साईमिनम तथा यह अम्बेलीफेरी कुल का पौधा है।

**उपयुक्त भूमि तथा भूमि को तैयारी :–** जीरे की खेती के लिए रेतली दोमट से मध्यम भारी मृदा उपयुक्त है। उपयुक्त जल निकास व्यवस्था होना आवश्यक है। मृदा में उपयुक्त जीवांश पदार्थ होना चाहिए।

इस फसल के लिए खेत को 2–3 बार देशी हल से जुताई करें इसके बाद पाटा लगाकर भूमि को समतल कर दें। बुआई के समय मृदा में नमी पर्याप्त होनी चाहिए।

**उन्नत किस्में :–**

**आर.जेड. 19 :–** स्थानीय प्रभेदों से चयन विधि द्वारा स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा इस किस्म का विकास किया गया है। यह 120–140 दिनों में पकती है। इस किस्म के पौधे उर्ध्व वृद्धि करने वाले, गुलाबी रंग के पुष्प वाले होते हैं। किस्म के दाने सुडौल होते हैं। इस किस्म की औसत उत्पादकता 5–6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**आर.जेड. 209 :–** यह एक म्लानि प्रतिरोधी किस्म है जिसका विकास स्वामी केश्वानन्द राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय बीकानेर द्वारा किया गया है। यह किस्म 140–150 दिनों में तैयार होती है तथा इसकी औसत उत्पादकता 6.5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**आर.जेड. 223 :–** स्वामी केश्वानन्द राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय बीकानेर द्वारा विकसित यह किस्म गलानि रोग प्रतिरोधी है। इस किस्म के बीजों में 3.22 प्रतिशत तेल होता है। इसकी औसत उपज 6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**जी.सी.1 :–** यह एक लम्बे बढ़ने वाली किस्म है जो मसाला अनुसंधान केन्द्र, जाडू गांव, गुजरात से विकसित की गई है। यह किस्म 110–115 दिनों में पकती है तथा इसकी औसत उत्पादकता 7 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**जी.सी.2** :– यह झाड़ीनुमा, शाखाओं युक्त किस्म है। यह किस्म गुजरात के मसाला अनुसंधान केन्द्र, जाडू गांव से विकसित की गई है। यह एक अल्पावधि वाली किस्म है जो 100 दिनों मे पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म की औसत उत्पादकता 7 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**बुआई** :– जीरे की फसल की बुआई के लिए मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक का समय उपयुक्त है। इसको छिड़काव व पंक्तियों में बुआई विधि से बुआई की जा सकती है। सुचारू रूप से अन्तरशस्य क्रियाओ को करने के लिए तथा अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए पंक्तियों में बुआई करना श्रेयकर है।

बुआई से पूर्व बीजों को केप्टान, एग्रोसान जी.एन. या बाविस्टीन नामक रसायनों से उपचारित करना चाहिए। इन रसायनों की 2 ग्राम मात्रा 1 किग्रा बीजों के लिए उपयुक्त है। उपचारित बीजों की 12–16 किग्रा मात्रा एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए पर्याप्त होती है। बीजों को 25 सेमी पंक्ति से पंक्ति दूरी पर 10 सेमी पौधो से पौधे दूरी पर बोना चाहिए। बीजों को 1.5 से 2 सेमी गहराई पर बोना चाहिए।

**खाद एवं उर्वरक** :–

जीरे की अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पोषक तत्व प्रबन्धन नितान्त आवश्यक है। खाद व उर्वरकों की मात्रा भूमि की उर्वरा शक्ति, किस्म, सिंचाई उपलब्धता तथा मृदा के गुणधर्मों के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए। सामान्य दशाओं में 10 टन गोबर की खाद या 5 टन कम्पोस्ट खाद को बुआई के तीन सप्ताह पूर्व प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मृदा में अच्छी तरह मिला दें। इसके साथ 30 किलोग्राम नत्रजन, 20 किलोग्राम फास्फोरस तथा 20 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से रासायनिक उर्वरकों से दे। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय देनी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा बुआई के 30 व 60 दिनों के बाद देवें।

**जल प्रबन्धन** :– जीरे की फसल को 3–4 सिंचाई की आवश्यकता होती है। जीरे की फसल को बुआई के बाद एक हल्की सिंचाई करें। इसके पश्चात 25–30 दिनों के अंतराल पर तीन–चार बार सिंचाई करें। फसल के पकने के समय सिंचाई न करें।

**अन्तरशस्य क्रियाएं एवम् खरपतवार नियंत्रण**– जीरे की अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए खरपतवार नियंत्रण बहुत आवश्यक है। जीरे की फसल में 2 बार निराई–गुड़ाई करें। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए फ्लूक्लोरोलीन (बेसालिन) नामक शाकनाशी की 0.75 से 1 किग्रा अंकुरण को प्रति हैक्टेयर की दर से बुआई से पूर्व मृदा में मिला देवें। बुआई के बाद व फसल अंकुरण से पूर्व पेंडिमिथेलिन नामक शाकनाशी को 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से भी प्रयोग कर सकते हैं।

**पादप संरक्षण**– जीरे मे एफिड एक मुख्य नाशी कीट है। इसके नियंत्रण हेतु एण्डोसल्फान (0.05 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफास (0.1 प्रतिशत) या डाइमिथोएट (1.5 प्रतिशत) कीटनाशी का छिडकाव करें।

जीरे में लगने वाले रोगों में झुलसा, म्लानी तथा चूर्णिल आसिता प्रमुख समस्या है। झुलसा रोग से प्रभावित पौधों में पौधे की पतियां गहरे भूरे रंग की जली हुई सी हो जाती है तथा ग्रसित पौधा सूख जाता है। इस रोग के उपचार हेतु डाइथेन एम. 45 तथा डाइथेन जेड. 78 नामक कवकनाशी रसायनों का 0.2 प्रतिशत घोल का छिडकाव करें।

म्लानी रोग से ग्रसित पौधे की पत्तिया गिरने लगती है तथा पौधा सूख जाता है। इस रोग के बचाव हेतु ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें, फसल चक्र अपनाएं, बीजों को उपचारित करके बोयें तथा ट्राइकोड्रमा की 4 ग्राम मात्रा से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करके बोयें। चूर्णिल आसिता से ग्रसित पौधे में सर्वप्रथम पत्तियों तथा शाखाओं पर सफेद चूर्ण सा दिखाई देता है तथा बाद में सम्पूर्ण पौधे सफेद चूर्ण से ढका हुआ नजर आने लगता है। इस रोग से बचाव के लिए गंधक चूर्ण का 20–25 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें या कैराथेन 0.1 प्रतिशत के घोल का छिडकाव करें।

## (ब) धनिया

धनिया एक महत्वपूर्ण बीजीय मसाले वाली फसल है इसका वानस्पतिक नाम कोरिएन्डरम सटाइटम है तथा यह अम्बेलीफेरी कुल का पौधा है।

**भूमि व भूमि की तैयारी** :– धनिया मध्यम से भारी दोमट मृदाओं में आसानी से उग सकता है। गहरी, उर्वर दोमट मृदा, जिसका पी.एच. 6–7 हो इसके लिए सर्वोपयुक्त है। बुआई से पूर्व खेत को 2–3 बार जुताई करके भुरभुरा बना लें इसके बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेवें।

**उन्नत किस्में** :–

**आर.सी. आर.41** :– सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त इस किस्म का विकास स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा किया गया है। इस किस्म के पौधे उर्ध्व बढने वाले तथा इसके दाने छोटे होते है। यह किस्म ग्लानी तथा तना गांठ रोग की प्रतिरोधी है। यह किस्म 130 से 140 दिनों में पक कर तैयार होती है। इसकी औसत उत्पादकता 8–9 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.सी.आर–20** बारानी व अल्प सिंचित क्षेत्रों के लिए इस किस्म का विकास स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय बीकानेर, इस किस्म के पौधे झाड़ीनुमा मध्यम ऊंचाई के होते हैं तथा इसके दाने बड़े होते हैं। यह किस्म चूर्णित आसिता तथा ग्लानी रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। इस किस्म की अवधि 120 दिन है तथा औसत उपज 9 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.सी.आर 435**– यह किस्म उच्च उर्वरता वाली भूमि तथा सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। मध्यम अवधि वाली यह किस्म झाड़ीनुमा तथा शीघ्र वृद्धि करने वाली है। इस किस्म के दाने मध्यम प्रकार के होते हैं। यह जड़–गांठ सूत्रकृमि तथ चूर्णिल आसिता रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी किस्म है। इस किस्म की औसत उत्पादकता 10 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.सी.आर. 436**– यह किस्म भारी मृदाओं वाले बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह एक मध्यम ऊंचाई वाली, झाड़ीनुमा, तीव्रवृद्धि करने वाली किस्म है। इसके दाने सुडौल होते है। यह किस्म 90–100 दिनों में तैयार हो जाती है तथा इसकी औसत उत्पादकता 10–11 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.सी.आर. 684**– सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह मध्यम अवधि वाली किस्म है। यह 130 दिनों में पक कर तैयार होती है। यह किस्म तना गांठ रोग प्रतिरोधी है तथा इसकी औसत उपज 9.9 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**एन.आर.सी.एस.एस.ए.सी.आर.–1** :– यह लम्बे बढ़ने वाले दीर्घावधि वाली किस्म है। यह किस्म दाने तथा हरी पतियों के प्रयोजन के लिए उपयुक्त है। यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इस किस्म को औसत उत्पादकता 12.5 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**बुआई** :– पत्तियों के उत्पादन के लिए ग्रीष्मकाल को छोडकर इस फसल को वर्षपर्यन्त उगाया जा सकता है। राजस्थान के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के लिए मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक का समय बुआई के लिए उपयुक्त है। सिंचित क्षेत्रों के लिए 10–12 किलोग्राम तथा बारानी क्षेत्रों के लिए 15–20 किलोग्राम बीजदर प्रति हैक्टर के लिए उपयुक्त है। अच्छे उत्पादन हेतु फसल को 25–30 सेमी. अन्तराल पर पंक्तियों में 2 से 2.5 सेमी गहराई पर बोना चाहिए। बुआई से पूर्व बीजों को एग्रोसान जी.एन. या वाविस्टान नामक रसायनों से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करना चाहिए। दीमक की रोकथाम हेतु 4 प्रतिशत एण्डोसल्फान, या 1.5 प्रतिशत क्यूनीलोफास या 2 प्रतिशत मिथाइल पेराथियान चूर्ण का 20–20 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें।

**खाद व उर्वरक**– धनिया फसल के अच्छे उत्पादन हेतु उपयुक्त पोषक तत्व प्रबन्धन की महत्ती आवश्यकता है। मृदा की उर्वरता के अनुसार ही खाद व उर्वरक की मात्रा का निर्धारण करना चाहिए। सामान्य दशाओं में धनिया की फसल को 40 किलोग्राम नत्रजन, 30 किलोग्राम फास्फोरस तथा 20 किलोग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। बुआई से 2 माह पूर्व 10 टन गोबर की खाद या 5 टन कम्पोस्ट को प्रति हैक्टर की दर से खेत में अच्छी तरह फैलाकर बाद में जुताई कर दें। नत्रजन का एक तिहाई अंश, फास्फोरस व पोटश की पूर्ण मात्रा को बुआई के समय देवें। नत्रजन की शेष मात्रा को बुआई के 30 व 60 दिन बाद आधा–आधा करके खड़ी फसल में देवें।

**जल प्रबन्धन :–** सामान्य दशाओं में धनिया की फसल को 4 से 6 सिंचाई की आवश्यकता होती है। अंकुरण, शाखाओं के निकलने के समय व पुष्पन अवस्था में मृदा नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। सामान्यता बुआई के 30–35, 60–65, 80–90, 100–105 तथा 110–115 दिनों के बाद प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पांचवीं सिंचाई करें।

**अन्तरशस्य क्रियाएं एवम् खरपतवार नियंत्रण :–** प्रारंभिक अवस्था में धनिया धीमे वृद्धि करता है। अतः फसल के प्रारंभिक काल में 2–3 निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। खरपतवार नियंत्रण के लिए फसल की बुआई के 30 व 60 दिन बाद निराई करें। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण हेतु बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरोलिन नामक शाकनाशी का प्रयोग 0.750 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

इसके अतिरिक्त ऑक्सीफ्लूरोफेन की 150 ग्राम या पेन्डिमिथेलिन की 1 किग्रा मात्रा का प्रयोग बुआई के बाद तथा फसल अंकुरण से पहले प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

**पादप संरक्षण–** म्लानी, चूर्णिल आसिता तथा तना गांठ इस फसल की मुख्य व्याधियां है। म्लानी एक कवकजनित व्याधि है जो कि हल्की मृदाओं में ज्यादा होता है। पौधे की पतियों का पीला होना, शीर्ष शाखा तथा पतियों का झुकना इस रोग के मुख्य लक्षण है। इस रोग के नियंत्रण हेतु फसल चक्र अपनाना, बीजों का सेरेसान या एग्रोसान जी.एन से 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना तथा ट्राइकोड्रमा विरीडी से 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करना चाहिए। तना गांठ भी एक कवक जनित रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधे में तना, पर्णवृन्त तथा पुष्पवृन्त पर गांठें बन जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे पर लगने वाले दाने विकृत हो जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु बीजों को केप्टीफॉल नामक कवकनाशी की 2 ग्राम मात्रा से प्रतिकिलोग्राम बीज को उपचारित करें। खड़ी फसल में 0.1 प्रतिशत कार्बोडिन्जम या 0.2 प्रतिशत केप्टॉन या नामक रसायनों का छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता से ग्रसित पौधे की पत्तियों, शाखाओं व फलों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। इस रोग के प्रभाव से बीजों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु गंधक चूर्ण का बुरकाव, कार्बोडिन्जम (0.05 प्रतिशत) या डिनोलेप (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

एफिड इस फसल का मुख्य नाशीकीट है। यह कीट पौधे की पत्तियों, फूलों व फलों से रस चूसकर बहुत अधिक हानि पहुंचाता है। इसके प्रकोप से पौधा पीला तथा दाने सिकुड़ जाते हैं। इस कीट के नियंत्रण हेतु अत्यधिक ग्रसित पौधों को उखाड़ कर फेंक देवें। इसके अलावा मोनोक्रोटोफास (0.1 प्रतिशत) या डाइमिथोएट (0.1 प्रतिशत) या एण्डोसल्फान (0.05 प्रतिशत) या फास्फोमिडोन (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

## (स) सौंफ

सौंफ का वानस्पतिक नाम फोइनीकुलम वलगेर है तथा यह एपिएसी कुल का पौधा है। यह शीतकालीन फसल है तथा उत्तरी भारत में रबी काल मे उगाई जाती है। इस फसल के लिए 15–20 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त है।

**भूमि व भूमि की तैयारी**– उपयुक्त जल निकास तथा उच्च उर्वरता वाली दोमट मृदा इसके लिए सर्वोत्तम है। इस फसल के लिए भारी मृदा ज्यादा उपयुक्त है। इस फसल के लिए उदासीन से अल्प क्षारीय मृदाएं जिनका पी. एच. 6.5 से 8.0 हो उपयुक्त है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद दो जुताई देशी हल या हैरों से करें। अंतिम जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर देवें। दीमक के नियंत्रण हेतु एण्डोसल्फान (4 प्रतिशत) या मिथाइल पेराथियान (2 प्रतिशत) चूर्ण को 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

**बुआई**– सितम्बर के अंतिम सप्ताह से लेकर मध्य अक्टूबर तक का समय सौंफ फसल की बुआई के लिए सर्वोत्तम है। एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 8 किग्रा बीज का प्रयोग करें। बुआई से पूर्व बीजों को केप्टान और थाइरम नामक कवकनाशी से 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करें। बुआई से पूर्व बीजों को 7–8 घंटों तक पानी में भिगोने से बीजों का अंकुरण अच्छा होता है। अच्छी उपज तथा अन्तशस्य क्रियाओं में आसानी के लिए फसल को पंक्तियों मे बोना चाहिए।

**खाद व उर्वरक**

खाद व उर्वरकों की उचित मात्रा का निर्धारण हेतु मृदा की उर्वरता की जांच करवाएं। सौंफ की अच्छी उत्पादकता हेतु बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व 15 टन भलीभांति सड़ी गली गोबर की खाद को प्रति हैक्टर की दर से डालें। सामान्य उर्वर भूमि में 90 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस तथा 30 किलोग्राम पोटाश के प्रति हैक्टर की दर से डालें। नत्रजन को एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस व पोटश की पूर्ण मात्रा को बुआई के समय देवे। नत्रजन के शेष मात्रा को 30 व 60 दिन बाद खड़ी फसल में देवें।

**उन्नत किस्में**–

आर.एफ. 101– 150–160 दिनों में तैयार होने वाली इस किस्म का विकास स्वामी केश्वानन्द राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय बीकानेर, द्वारा किया गया। इस किस्म के पौधे लम्बे, सीधे बढ़ने वाले तथा मजबूत तने वाले होते हैं। इसके छत्रक बड़े आकार के तथा दाने लम्बे व सुडौल होते हैं। इसकी औसत उत्पादकता 15.5 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.एफ. 125**– यह किस्म भी स्वामी. केश्वानन्द राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय बीकानेर द्वारा विकसित की गई है। यह कम समय में पकने वाली, कम लम्बाई वाली तथा सुडौल दानों वाली

किस्म है। इसकी औसत उत्पादकता 17.3 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.एफ. 143**– स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय बीकानेर द्वारा विकसित यह किस्म दोमट व काली मृदाओं के लिए उपयुक्त है। यह मध्यम अवधि वाली तथा मध्यम ऊंचाई वाली किस्म है। इसकी औसत उत्पादकता 12 क्विटल प्रति हैक्टर है।

**एन.आर.सी.एस.एस.– ए.एफ.1**– यह किस्म राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, अजमेर द्वारा विकसित की गई है। इसके पौधे लम्बे, उर्ध्व तथा बड़े छत्रक वाले होते हैं। इसके दाने मध्यम आकार के आकर्षक होते हैं। इसकी औसत उत्पादकता 19.5 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इनके अलावा पी.एफ. 35, जी.एफ.1, जी.एफ.2, हिसार स्वरूप भी इस फसल की उन्नत किस्में हैं।

**जल प्रबन्धन**– अन्य बीजीय मसालों वाली फसलों की तुलना में सौंफ की जल मांग ज्यादा होती है। बुआई के तुरन्त बाद एक हल्की सिंचाई करें इससे फसल का अंकुरण अच्छा होता है। किसी स्थान विशेष के तापमान व मृदा प्रकार के अनुसार इस फसल को 15–20 दिनों के अंतराल पर 6–8 सिंचाई देवें।

**अन्तरशस्य क्रियाएं एवम् खरपतवार नियंत्रण**– फसल की प्रारंभिक अवस्था में वृद्धि धीमी होती है जिससे फसल में खरपतवार प्रकोप ज्यादा होता है। फसल में प्रभावी खरपतवार नियंत्रण हेतु फसल को बुआई के बाद व फसल के अंकुरण से पूर्व पेन्डिमिथेलिन नामक रसायन की 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से छिडकाव करें।

**पादक संरक्षण** – सौंफ की फसल मे झुलसा तथा चूर्णिल आसिता मुख्य रोग है। झुलसा रोग के प्रभाव से पौधे की पतियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं व पौधा सूख जाता है। इस रोग के रोकथाम हेतु 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम. 45 या 0.2 प्रतिशत डाइथेन जेड 78 का छिड़काव करें। चूर्णिल आसिता से ग्रसित पौधे की पत्तियों व शाखाओ पर सफेद चूर्ण से ढक जाते है। इस रोग के रोकथाम हेतु फसल में 20–25 किलोग्राम गंधक चूर्ण प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें या केराथेन 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें। एफिड नाशिकीट फसल के पुष्पन अवस्था में आक्रमण करते हैं इसके रोकथाम हेतु 0.03 प्रतिशत डाइमीथोएट (30 ई.सी.) या 0.03 प्रतिशत फास्फोमीडोन कीटनाशकों का छिड़काव करें।

## (द) मैथी

मैथी की दो प्रजातियों की खेती की जाती है। एक प्रजाति जिसका बीज बड़े आकार का होता है का वानस्पतिक नामक ट्राइगोनेला फोइनूमगरेसियम है। दूसरी प्रजाति जिसको सामान्य भाषा में कसूरी मैथी कहते है का बीज छोटे आकार का होता है का वानस्पतिक नाम ट्राइगोनेला कोरनीकुलेटा है।

मैथी शरद कालीन फसल है तथा अन्य बीजीय मसालों की तुलना में कम तापमान व

पाले के प्रति प्रतिरोधी है। उत्तरी भारत में इसकी खेती रबी काल में की जाती है।

**भूमि व भूमि की तैयारी**– मैथी के खेती अच्छे जल निकास तथा मध्यम जीवांश पदार्थ वाली सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। हालांकि दोमट मृदाएं इसकी खेती हेतु सर्वोत्तम है। मैथी की खेती के लिए पी.एच 6 से 7 वाली मृदाएं उपयुक्त हैं। यह क्षारीयता के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

मैथी की अच्छी फसल के लिए भूमि को 2–3 बार जुताई करें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें तथा इसके बाद 2 जुताई देशी हल से करें। अंतिम जुताई के बाद पाटा चलाकर भूमि को समतल कर दें। दीमक के रोकथाम हेतु भूमि का एण्डोसल्फान 4 प्रतिशत या क्युनीलफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पेराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण का 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से उपचारित करें।

**उन्नत किस्में** –

**आर.एम.टी.** 1– यह अर्द्ध–उर्ध्व, लम्बी तथा मध्यम शाखा युक्त किस्म है जिसको स्वामी केश्वानन्द, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म 140 से 150 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 14–15 क्विटल प्रति हैक्टर है।

**आर.एम.टी.–305** – यह किस्म स्वामी केश्वानन्द, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा उत्परिवर्तन विधि द्वारा इस किस्म को विकसित किया गया है। इसके पौधे बौनें, अधिक फली वाले तथा कम अवधि में पककर तैयार हो जाते हैं। यह किस्म चूर्णिल आसिता तथा मूत्र गांठ सूत्रकृमि के प्रति प्रतिरोधी होती है। इसकी औसत उत्पादकता 13 क्विटल प्रति हेक्टर है।

**आर.एम.टी.–143** – यह किस्म शुद्धवंशक्रम चयन विधि द्वारा स्वामी केश्वानन्द, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा विकसित की गई है। यह राजस्थान के भीलवाड़ा, झालावाड़ व जोधपुर क्षेत्रोंके लिए उपयुक्त किस्म है। इसकी औसत उपज 16 क्विटल प्रतिहेक्टर है।

**एन.आर.सी.एस.एस.ए.एम.–1** – यह किस्म राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, अजमेर द्वारा विकसित की गई है।इसके पौधे मध्यम ऊंचाई वाले तथा चौड़ी पक्तियों वाले होते है। इसके दाने सुडौल वबड़े होते हैं। इस किस्म की अवधि 137 दिन है तथा इसकी औसत उपज 27–28 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**एन.आर.सी.एस.एस.ए.एम.–2** – यह किस्म राष्ट्रीय बीजीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, अजमेर द्वारा विकसित की गई है। इसके दानों का आकार छोटा होता है यह किस्म 138 दिनों में पक जाती है तथा इसकी औसत उपज 18.1 क्वि. प्रति हैक्टर है।

इनके अतिरिक्त राजेन्द्रा क्रान्ति, हिसार सोनाली, हिसार सुर्वना, हिसार मुक्ता, हिसार माध्वी मैथी की अन्य उन्नत किस्में हैं। कसूरी मैथी की पूसा कसूरी एक उन्नत किस्में है।

**बुआई**– यह शरदकालीन फसल है। उत्तरी भारत में अक्टूबर से नवम्बर माह इसकी बुआई के लिए उपयुक्त है। सामान्य मैथी का 20–25 किलोग्राम तथा कसूरी मैथी का 8–10 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। बीज को बोने से पूर्व एग्रोसान जी.एन या थाइराम नामक रसायनों से 2.5 ग्राम प्रतिकिलोग्राम बीजों की दर से उपचारित करें। बीजों को राइजोबियम जीवाणु से भी उपचारित करना चाहिए।

मैथी की फसल की बुआई छिटकवा व पंक्तियों में बुआई विधि से की जाती है। अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए पंक्तियों में बुआई करना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25–30 सेमी रखें। सामान्य मैथी के लिए 2–3 सेमी तथा कसूरी मैथी के लिए 1–1.5 सेमी गहराई पर बीजों को बोना चाहिए।

**खाद व उर्वरक**– सामान्य दशाओं में भलीभांति सड़ी गोबर की खाद को 10 टन प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 1 माह पूर्व भूमि में अच्छी तरह से मिला देवें। इसके अलावा 25 किलोग्राम नत्रजन तथा 20 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हैक्टर की दर से बआई के समय रासायनिक उर्वरकों के द्वारा देवें।

**अन्तरशस्य क्रियाएं एवम् खरपतवार नियंत्रण** – बुआई के 30 व 60 दिन बाद दो बार निराई–गुड़ाई करें। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण हेतु बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरोलेन शाकनाशी की 0.75 से 1 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूमि में मिला दें।

**जल प्रबन्धन**– सिंचाई की संख्या स्थान विशेष की जलवायु व मृदा प्रकार पर निर्भर करती है। बुआई के बाद एक हल्की सिंचाई करें। इसके बाद 15–20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें।

**पादप संरक्षण** – चूर्णिल आसिता, मृदूरोमिल आसिता, मूल विगलन तथा पर्णधब्बा इस फसल के मुख्य रोग हैं। यह सभी कवक जनित रोग हैं। चूर्णिल आसिता से ग्रसित पौधे की पतियों व शाखाओं पर सफेद चूर्ण फैल जाता है। इसके रोकथाम हेतु 20–25 किलोग्राम गंधक चूर्ण को प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें या 0.1 प्रतिशत केराथेन या डाइनोकेप (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करें। मृदूरोमिल आसिता से ग्रसित पौधों की पतियों को ऊपरी सतह पर पीले धब्बे तथा निचली सतह पर कपास की रूई की तरह की कवक नाल दिखाई देता है। इसके रोकथाम हेतु ब्लाइटॉक्स या फाइटोलीन या जिनेब का 0.2–0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। मूल विगलन से प्रभावित पौधों की पत्तियां पीली हो जाती है तथा पौधा सूख जाता है इस रोग के रोकथाम के लिए फसल चक्र, रोग प्रतिरोधी किस्मों को अपनाएं तथा बीजों को केप्टान सेरेसान या एग्रोसान जी.एन. कवकनाशियों द्वारा 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करें। पर्ण धब्बा रोग के नियंत्रण हेतु मेन्कोजेब 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

****

# शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पुष्प उत्पादन : सम्भावनायें एवं तरीके

महेश शर्मा

*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

प्रकृति अपना प्यार लहराते शोभायमान पुष्पीय वृक्षों,खिलते पुष्पों तथा उपोगी फलों द्वारा व्यक्त करती है। हरीमिता की यह अभूतपूर्व सम्पदा उसने अपने पुत्र/पुत्रियों के सर्वांगीण विकास के लिये प्रदान किया है। अतः प्रकृति की यह कामना है कि उसके पुत्र एक उद्यान शास्त्री की तरह जिएं, जिसके प्रयासों की चर्चा लहराते वृक्ष अपने फल देकर और खिलते पुष्प सौंदर्य और सुगन्ध फैलाकर करते है। इन्हीं अपरिहार्य कारणों के फलस्वरूप मानव के मन व हृदय में फल एवं फूल के वृक्षों तथा वनस्पतियों से सदैव लगाव रहा है। उनकी खेती एवं उनके बारे में ज्ञान प्राप्त करने की लालसा अतिप्राचीन काल से रही है। मानव जीवन का ताना बाना धरती पर फैली हरियाली से गुंथा हुआ है। हरे पौधों के बिना हम न सांस ले सकते हैं और न पेट भर सकते हैं। प्रकृति की इसी सत्यता को ध्यान में रखते हुये उद्यान वैज्ञानिकों ने शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में भी पुष्प उत्पादन की नई सम्भावनायें व नित नये तरीके इजाद कर मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियें में भी पुष्प उत्पादन सम्भव कर दिखाया है तो आइये जानते हैं शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाले पुष्पों एवं उनकी उन्नत खेती की सम्भावनों के बारे में –

### गेन्दा :

**अफ्रीकन गेंदा (टैगेटीज इटेक्टा)** : यह एक वर्षीय व अर्द्धशाकीय पौधा होता है जिसकी औसत लम्बाई 60 सेमी. होती है। पुष्प का आकार 7 सेमी. से 15 सेमी. व रंग लेमन पीला सुनहरा पीला होता हैं।

**किस्में** : जायंट डबल, अफ्रीकन औरेज, अफ्रीकन यलो, क्रेकर चैक, क्लाइमैक्स, डबलून, गोल्डेन एज, क्राउन ऑफ गोल्ड, स्पन गोल्ड।

**टैगटीज पैटुला (फ्रेंच मेरीगोल्ड या गेन्दा)** : पौधा अतिशाखीत, एक वर्षीय, घना झाड़ीदार जिसकी औसत ऊंचाई 30 सेमी. होती है। पुष्प छोटे 2.5 से 5.0 सेमी. आकर के घने व पीले, नारंगी सुनहरा, प्रिमरोज, गुलाबी, लाल, सिन्दुरी व इन रंगों का मिश्रण वाले होते हैं।

**किस्में** : ड्वार्फ डबल – स्कैबियस, ड्वार्क डबल पेटाइट, फ्रेंच ड्वार्फ सिंगल डर्वाफ ट्रिप्लवाइड एफ–1 संकट, ड्वार्फ डबल, रेड ब्रोकेड, रस्टीरेड वाटर स्कॉच आदि।

**उपयोगिता** : इसके पुष्प धार्मिक कार्यों, सामाजिक कार्यों, औषधीय गुणों, वाष्पशील तेल के

लिये अत्यन्त ही उपयोगी है। विभिन्न उद्यानकीय रूपो मे उपयोगी होने का यह गुण उसके विपुल एव स्वतंत्र पुष्पन, शीघ्र पुष्पन, आकर्षक रूप और रग व सरलता से उगाये जा सकने का गुण होने के कारण होता है।

**जलवायु एवं भूमि :** गेदा के लिये सामान्य औसत जलवायु की आवश्यकता होती है। ग्रीष्म तथ शीत की अधिकता दोनो ही हानिकारक होती है। उचित तापक्रम 14.5 से 28.6° सेन्टिग्रेड माना जाता है।

भूमि का पी एच. मान 7.0 से 7.5 उचित पाया गया है।

**उत्पादन तकनीक :** प्रवर्धन बीज द्वारा तथा कलम द्वारा सभव है बीज सरलता से 18° से 30° सेन्टिग्रेड तापक्रम पर आसानी से अकुरित हो जाते है।

**बीज की मात्रा :** 500 ग्राम सें 1.5 किलोग्राम, पौध तैयार करने के लिये 3 X 1 मीटर आकार की 8–10 क्यारियो की आवश्यकता होती है एक हैक्टयर क्षेत्र के लिये पौध तैयार करने के लिये।

**समय : बीज बोने, पौध रोपण व पुष्पन का समय**

| बीज बोना | पोध रोपण करना | पुष्पन |
|---|---|---|
| मध्य जून | मध्य जुलाई | वर्षा के अन्त तक |
| मध्य सितम्बर | मध्य अक्टूबर | शरद ऋतु |
| जनवरी–फरवरी | फरवरी–मार्च | ग्रीष्म ऋतु |

**रोपण दूरी :** गेन्दा की किस्मों के अनुसार 30 X 40 सेमी, 30 X 30 या 20 X 30 सेमी

**खाद एवं उर्वरक** . 200 से 250 क्विंटल अच्छी सडी गोबर की खाद जुताई पूर्व जमीन में मिलाकर जुताई करे। उर्वरको मे 200 किलो नत्रजन, 100 किलो फास्फोरस व 100 मिलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से देवे।

**सिंचाई :** गेन्दा की वानस्पतिक वृद्धि 55–60 दिनों तक चलती है। शरद ऋतु में 7–10 दिनों के अन्तर पर व ग्रीष्म ऋतु के 5–7 दिनों के अन्तर पर भूमि की किस्म के अनुसार पानी देना चाहिए। बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति से पानी देने से पानी का नुकसान भी कम होता है व फूलों की गुणवत्ता व उत्पादकता भी ज्यादा मिलती है।

**निष्प्ररोहण (पिन्चींग) :** पौधे लगाने के 40 दिनो बाद पौधे के शीर्ष को तोड देना निष्प्ररोहण कहलाता है। इससे पौधे की बगल की शाखाये अधिक निकलती है। व पुष्प उत्पादन अधिक मिलता है।

**पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग :** पौधों की ऊंचाई कम करने, पौधे को झाडीदार बनाने व पुष्पन को बढ़ाने के लिये वृद्धि नियामकों का उपयोग किया जाता है।

- टीबा-25 पी.पी.एम. को 5 पत्तियों की अवस्था में छिड़कने से शाखायें अधिक आती है।
- एलार–1000 पी.पी.एम. का दो बर छिड़काव करने से पौधा ठोस झाडीनुमा बनता है व पुष्पों की भी संख्या बढ़ जाती है।
- इथरल 2000 पी.पी.एम. का छिड़काव करने से पौधों की ऊंचाई में 27.9 प्रतिशत की कमी आ जाती है।
- एम.एच. 400 पी.पी.एम. का छिड़काव पौधों की वृद्धि को कम करता है।
- थायोयूरिया 50 पी.पी.एम. के छिडकाव से पुष्पों के भार में वृद्धि व पुष्प उत्पादन बढ़ता है।

**पुष्प उत्पादन :**

| | | |
|---|---|---|
| वर्षा ऋतु | – | 200–250 क्विंटल /है. |
| शरद ऋतु | – | 150–175 क्विंटल /है. |
| ग्रीष्म ऋतु | – | 100–125 क्विंटल /है. |

पुष्पों की तुड़ाई प्रातःकाल या सांयकाल करनी चाहिये तोड़ने के पश्चात उन्हें गीले बोरे/जूट में लपेट कर रखना चाहिए।

**रोग नियंत्रण :**

***आर्द्र गलन/पद गलन :*** भूमि से लगा हुआ पौधे का भाग गल जाता है व पौधा गिर जाता है। नियंत्रण के लिये 0.25 प्रतिशत केप्टान से बीच उपचारित कर बीजों की बुआई करें।

***पर्णदग एवं अंगमारी :*** पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे आरम्भ होकर पूरी पत्तियों पर फैल जाता है। अंगमारी में लाल से भूरे रंग के चकते बनते हैं जिनका बीच का भाग मटमैला काला होता है।इसके नियंत्रण के लिये डायथेन एम.45 का 0.2 प्रतिशत घोल का पौधों पर छिड़काव करें।

***पुष्पक्रम अंगकारी (ब्लाईट/व कलिका सड़न) :*** पुष्प क्रम में लम्बे दाग तथा बड़े अनियमित धब्बे, पत्तियों पर ये धब्बे हल्के भूरे रंग के होते हैं। नियंत्रण के लिये डायथेन एम–45 के 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

**चूर्णी फंफूंदी :** पौधे की निचली पत्तियों पर दूध के समान चकते बनना बाद में पूरी पत्तियों पर फैल जाते हैं व फूलों का आकर छोटा रह जाता है। नियंत्रण के लिये घुलनशील गंधक 0.2 प्रतिशत या कैराथेन 0.05 प्रतिशता के घोल का छिड़काव पौधों पर करना चाहिए।

**कीट नियंत्रण :**

***रेड स्पाइडर माईट :*** लाल रंग के कीट पत्तियों के पीछे छिपे रहते हैं नियंत्रण के लिये मेटासिस्टाक्स 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

**रोमिल कैटरपिलर :** ये कीट पत्तियों को खाते हैं। नियंत्रण के लिये थायोडान 0.1 प्रतिशत के पानी में घोल का छिड़काव करें।

*लीफ होपर :* ये कीट भी पौधे की पत्तियों को खाते हैं इनकी रोकथाम के लिये पौधों पर 0.1 प्रतिशत मैलाथियान के घोल क छिडकाव करें।

## रजनीगंधा

रजनीगंधा अत्यन्त सुगन्धित पुष्प है। इसका सुगंधित तेल और पुष्प निर्यात किये जाते है। इस कट फ्लावर, गमलों, क्यारियों व पट्टियो में उगाया जाता है। पुष्पों से माला व स्त्रियों के बालों में लगाने के लिये 'वेनी' बनाई जाती है।

**किस्में :**

एकल किस्मे : कलकत्ता सिंगल, कोयम्बटोर सिंगल, बैंगलोर सिंगल मैक्सिकन, रजत रेखा, श्री नगर (संकर किस्म)

डबल किस्में : स्वर्ण रेखा, सुवासिकी

**जलवायु एवं भूमि :** यह पौधा शुद्ध रूप से प्रकाश संवेदनशील नहीं है किन्तु लम्बे दिनों में इसकी वृद्धि अधिक होती है और पुष्प स्पाईक शीघ्र निकालते हैं। इसके लिये उचित तापक्रम 20–30$^0$ सेन्टीग्रेट होता है। तापक्रम 40$^0$ सेन्टीग्रेट से ऊपर होने व 10$^0$ सेन्टीग्रेट से नीचे जाने पर पुष्प डबल (स्पाईक) की लम्बाई, भार व गुणों में कमी आ जाती है।

गर्म, नम और प्रकाश वाले स्थल इसको उगाने के लिये उचित रहते हैं। जल निकस की भूमि में उचित स्थिति रहना प्रथम आवश्यकता है। मान भूमि का पी.एच. मान 6.7 से 7.5 के मध्य होना चाहिए। रेतीली दुमट, भुरभुरी मिट्टी जिसका वायु परिभ्रमण अच्छा हो, इसके लियें उचित रहती है।

**उत्पादन तकनीक :**

प्रर्वधन : शल्ककन्द एवं बीज के द्वारा, कन्द का आकार तर्कुरूप, व्यास 1.5 सेमी. से अधिक व वजन 30–40 ग्राम के होना चाहिए। बल्ब/बीज द्वारा–अंकुरण के लिये 10–15 दिनों का समय लगता है।

**रोपण समय :** अप्रेल–मई में 30–40 X 15–20 सेमी. अर्थात 1,00,000 में 1,25,000 पौधे प्रति हैक्टेयर।

**खाद एवं उर्वरक :** खेत को तैयार करते समय 200–250 क्विंटल/हैक्टेयर गोबर की खाद य पत्तियों की खाद भूमि में मिलानी चाहिए। मूर्गी की खाद 5 क्विंटल/हैक्टेयर भी की जा सकती है। पौधों में नाइट्रोजन व फास्फोरस की कमी से पुष्पन में कमी आ जाती है। नत्रजन 40 किलोग्राम, फास्फोरस 60 किलोग्राम व पोटाश 40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिए। यूरिया, अर्थोफास्फोरिक एसिड व पोटेशियम नाइट्रेट के 0.1 प्रतिशत घोल का 15 दिनों के अन्तर से 2–3 छिड़काव करना लाभदयक पाया गया है।

**सिंचाई** – बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति से सिंचाई करने पर लम्बी पुष्प डंडिका व मोटे सुगन्धित पुष्प मिलते हैं। औसत जल की मात्रा 3000–4000 घन मीटर प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष है।

सामान्य रूप में ग्रीष्म ऋतु में 7–8 दिनों एवं शरद ऋतु में 10–12 दिनों के अन्तर से सिंचाई करना चाहिये। बल्ब के अंकुरण और पुष्पन के समय भूमि में अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।

**खरपतवार नियंत्रण** : एलाक्लोर 2 किलो/है. या पेन्डीमीथैलिन 1.25 किलोग्राम/है. या मेटाक्लोर 2.0 किलोग्राम/है. के उपयोग से खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है।

**सहारा देना** : डबल किस्मों के सहारा देना आवश्यक हो जाता है बांस की खपच्ची के द्वारा सहारा दिया जा सकता है।

पेडी की फसल तीन वर्ष तक ली जा सकती है।

**पादप वृद्धि नियामक** : जिबरेलिक ऐसिड 100 से 200 पी.पी.एम. या सी.सी.सी. 400 पी.पी.एम. के घोल में कंदो को डुबोने से 15–17 दिन पहले पुष्पन प्राप्त हो जाता है।

**पुष्पन एवं उत्पादन** : पुष्पन जुलांई से सितम्बर तक होता है। उत्पादन प्रथम फसल से 4.8 से 9.6 टन पुष्प डण्डिया प्राप्त की जा सकती है। इसके बाद पेडी 3 वर्ष तक की जा सकती है।

**कन्द उत्पादन** : प्रथमा वर्ष 200 कि./है. तीन वर्ष में औसत कन्द 300/टन 500–550 कि./है.

**उत्पादनोत्तर प्रौद्योगिकी** :

**तुड़ाई** : कट पुष्प के लिये पुष्प डंडी के आधार सें काटना चाहिए जबकि माला व वेनी के लिये प्रत्येक पुष्प को तोड़ना चाहिए।

**पैकिंग** : पुष्पो को डंठलो सहित 100 के बंडलों में बांधकर कागज में लपेट कर कार्ड बोर्ड के बॉक्सों (डिब्बों) में रखना चाहिये इससे पुष्प परिवहन में अधिक समय तक ताजे बने रहते हैं।

**रोग नियंत्रण** :

**तना सड़न** : भूमि के पास का तना बदरंग होकर सड़ जाता है। इसकी रोकथाम के लिये ब्रासीकाल 30 किलो/है. से भूमि उपचार करना य फार्मोलीन 0.2 प्रतिशता से धुमण भी किया जा सकता है।

**पर्ण दाग पुष्प तथा कालिका गलन** : नई कालिकयें सड़ कर सुख जती है डंढलों में ऊतक क्षय होने से रंग कम हो जाता है। रोकथाम के लिये डाइथेन एम. 45 का 0.2 प्रतिशत घोल का पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

**कीट नियंत्रण** :

**थ्रिफस व एफिड** : पत्तियों क रस चुसते है एवं कलियों को हानि पहुंचाते है इनके नियंत्रण के लिये कैलाथियान 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिये।

**रेडस्पाइडर माइट** : पत्तियों की पिछली सतह पर लाल रंग के कीट रस चुसते हैं। नियंत्रण के लिये फालीडाल 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

**मांसलोद्भिद पौधे** :

ऐसे पौधे जिनके पत्तियों, तना एवं जड़ों में जाम व खाद्य पदार्थ संग्रहण क्षमता होती है जिससे वे शुष्क वातवरण में जीवित रहते हैं, मासलोद्भिद कहते है।

विशेषतायें :

– ये पौधे गर्म या शीतल वातावरण होते हुये भी अपर्याप्त जल की स्थिति में भी विकसित हो जाते हैं।
– जो हर प्रकार की भूमि व जलवायु के अनुसार अपने आप को ढाल लेते हैं ।
– जिनका मूल संस्थान उथला हो।
– पत्तियां मांसल हों और उनमें ऐसे ऊतकों का समूह हो जिनमें जल धारण करने की क्षमता हो।
– पत्तियां मोटी पर्त (एपीडर्मिस) से ढकी हुई हो, स्टोमेटा कम संख्या में हो।

उपर्युक्त गुणों वाले पौधे प्रमुखतया कैक्टेसी, लिलियेसी, कस्यूलेसी, एमेरिलिडेसी व एजोएसी कुल के होते है। उनका आकार मोटा, पतला, लम्बा, चपटा तथा वृद्धि में भी भिन्नता होती है। ये अपने विलक्ष्ण तथा आश्चर्यजनक कलाकृति के कारण विशेष आकर्षण तथा भावना के केन्द्र रहते हैं। इनका उपयोग गमलों में गृह सज्जा के लिये तथा शैल उद्यानों में किया जाता है।

**प्रवर्धन** : इन्हें शाखा कलम, प्रत्ती कलम, उपरोपण व बीज द्वार तैयार किया जा सकता है। बीज से तैयार करना कठिन है सामान्य रूप से इन्हें उगाने के लिये शुद्ध वायु, प्रकाश, धुप, हवादार स्थान, रेतील भूमि जिसमें जल निकास उत्तम हो तथा अपेक्षाकृत शुष्क वातावरण की आवश्यकता होती है। इन्हें अन्य पौधों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है। इनकी कुछ प्रमुख प्रजातियां व वंश निम्नानुसार हैं –

1. अगेव : गुलाब के फूल के आकार के समान पौधे में पत्तियां विकसित होती है पौधा 1 से 1.5 मी. ऊंचा होता है गमलों में लगाया जा सकता है।
2. एकाइनो कैक्ट्स : छोटा, बिना शाखाओं वाला अंडाकार या गोलाकार कांटेदार व विचित्रता से भरपूर होता है। खरबूज या तरबूज के समान धारीदार क्रिकेट बॉल जैसा होता है। इन धारियों में सितारों के समान कांटे लगे रहते है।
3. एपिफिलम : कैक्ट्स, छोटा तथा गमलों में लगाने के लिए उपयुक्त।
4. ऐलोय : मांसल पत्तियां युक्त 0.75 मी. से 1.5 मी. ऊंचा होता है। गमलों में लगाया जा सकता है
5. ओपेन्शिया : गमलों में लगाने के लिये उपयुक्त।
6. डेजिलिरान : अत्यन्त सुन्दर, लॉन या गमलों में लगाने के लिये उयुक्त।
7. मिजेमबाइन्थिय : शैल उद्यानों के लिये उपयुक्त। भूमि पर फैलने वाले, गूदेदार पत्तियां तथा

फूल पीले, नारंगी व सफेद रंग के होते हैं।

8. सेरियस : आकर्षक, लम्बा, तना, फूल वर्षा ऋतु में रात्रि के समय खिलते हैं।

**शुष्क एवं आर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पुष्प उत्पादन के नये तरीके : प्लास्टिक का उपयोग**

शुष्क एवं आर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पुष्प उत्पादन : प्लास्टिक का उपयोग बीज के अंकुरण से लेकर उसकी बिक्री तक सुगमता से किया जा रहा है। प्लास्टिक से बने सामान सस्ते, टिकाऊ व सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में प्लास्टिकल्चर से तात्पर्य है बागवानी में जल प्रबंधन, पौध संरक्षण तथा फसल तुड़ाई/कटाई उपरान्त प्रबन्धन में प्लास्टिक का प्रयोग करना। प्लास्टिक के उपयोग से पुष्पीय फसलों का उत्पादन अधिन तथा गुणावत्तायुक्त प्राप्त होता है। साथ ही फूलों की फसलों को विपरीत मौसम में भी उगाकर अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। बागवानी के क्षेत्र में विविध प्रकार के प्लास्टिक उत्पादों का प्रयोग होता है जिससे अनेक लाभ होते हैं।

**मुख्य प्रयोग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | पौधशाला प्रबन्धन में | 2. | सोलराइजेशन में |
| 3. | प्लास्टिक मल्चिंग में | 4. | वातावरण नियंत्रण में |
| 5. | सिंचाई प्रणाली में | 6. | उप सतही निकास में |
| 7. | तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन में | 8. | नहर, तालाब और जलाशय के अस्तर में |

***

# शुष्क क्षेत्र में फल उत्पादन

आर. एस. सिंह
*केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर–334008*

देश का लगभग 12 प्रतिशत भू–भाग शुष्क क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत भाग या तो कृषि योग्य नही है या फिर परती भुमि में आता है। यह भूभाग लगभग दो करोड़ हैक्टेयर है जिसमें बागवानी विकास की अपार संभावनाए है । राजस्थान का तो लगभग दो तिहाई क्षेत्र ऐसा है जो बागवानी विकास के लिए वर्तमान परिपेक्ष में ओर अधिक महत्व रखता है । फसलों की खेती के अपेक्षाकृत बागवानी से अधिक उपज एंव आय मिलती है । फलदार पौधो के बाग कृषकों के लिए आय का स्थाई स्त्रोत भी माना जाता है क्योंकि अनुकूल परिस्थितियां न होने पर भी फल वृक्षों से आशातीत उत्पादन मिल जाता है । अव अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढाने की स्थिति नही है । अब अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढाने की स्थिति नही है कारण कि धटते जल संसाधन और लगातार पड़ने वाले अकाल की स्थिति को देखते हुए सबका ध्यान शुष्क बागवानी पर टिका हुआ है । इसके अतिरिक्त लगातार बढती हुई जनसंख्या के संर्वागींण विकास के लिए मरू क्षेत्र में बागवानी पर ध्यान देना अति आवश्यक है । कम वर्षा, घटते जल स्त्रोंत, महंगे होते संसाधन, और कई वर्षों से सुखा पड़ने से फसल उत्पादन कड़ी चुनौती बनता जा रहा है । ऐसी परती व बंजर भूमि जहां फसलों की काश्त संभव नही है वहां फल वृक्ष लगाए जा सकते है । फलो की बागवानी से सन्तुलित पोषण, आर्थिक लाभ, पर्यावरण सुरक्षा के अलावा वर्ष भर कार्य के अवसर एंव अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुंए प्राप्त हो सकेगी । काष्ठ कला उधोग, लकड़ी, ईधन, चारा, परिरक्षित पदार्थ, मधुमक्खी पालन व अन्य कुटीर उधोग स्थापित होंगे । फल एंव फलोत्पाद की निर्यात की संभावनाएं बढेगी, आयात पर होने वाले विदेशी मुद्रा खर्च में भी कमी होगी ।

शुष्क जलवायु परिस्थितियों में बागवानी फसलों का चयन एक महत्वपूर्ण भुमिका निभा सकता है क्योंकि इसमें जीवन–यापन के हर पहलुओं का संचालन संभव है । बढती हुई आबादी के लिए उनकी मांग के अनुसार पौष्टिक फल व सब्जियों का उत्पादन करना आवश्यक है जो कि अभी भी लक्ष्य से बहुत कम है । फल, फूल एंव सब्जियों की खेती से क्षेत्र का विकास होने के साथ ही अर्थ व्यवस्था मजबूत होगी तथा ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर सुलभ हो सकेंगें।

**फलों का महत्व**

फलों का पौष्टिक महत्व किसी से भी छिपा हुआ नही है । रोजमर्रा की जिंदगी में चुस्त–दुरूस्त रहने से लेकर बीमारी के बाद कमजोरी से निवारण के लिए फलो से मिलने वाला

पोषण बहुत उपयोगी है । मौसमी फलो में उपस्थित पोषक तत्व, खनिज लवण और विटामिन शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखते है जिससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है । उदाहरण के तौर पर पीले रंग के फल विटामिन ए से भरपुर होते है तथा रंग–बिरेगें रसीले फलों में मौजूद एन्टीऑक्सीडेन्ट पदार्थ कैंसर जैसी भयानक बीमारी की रोकथाम में सहायक होते है । विश्व स्वास्थ्य संगठन की अनुशंसा के अनुसार हर व्यक्ति को कम से कम 120 ग्राम फलों का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए जबकि भारत में मात्र 46 ग्राम व राजस्थान मे 20 ग्राम फल उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है । विकसित देशों में तुलना करें तो स्थिति और भी बदतर दिखाई देती है क्योंकि स्विट्जरलैण्ड एंव अमेरिका में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति फल उपभोग क्रमशः 419 एंव 223 ग्राम है ।

आज तक फल उत्पादन के क्षेत्र में की गई उपलब्धियॉ संतोषजनक तो है परन्तु अभी भी इस क्षेत्र में देश को बहुत आगे जाने की जरूरत है । अनुमान है कि सन् 2020 में देश की आबादी लगभग 135 करोड़ से भी अधिक होगी जिसके लिए 80 मिलियन टन फलों की जरूरत पड़ेगी जिसके लिए आज सुनहरी क्रान्ति के कियान्वयन की जरूरत है । उधानिकी फसलें परम्परागत फसलों की तुलना में अधिक आमदनी, पोषण व आजीविका सुरक्षा प्रदान करनें में सक्षम है ।

**शुष्क क्षेत्र में फल उत्पादन की संभावनाएं**

बेर, आवला, अनार, खजूर, बेल, शहतूत, फालसा, करौंदा, इमली इत्यादि के अतिरिक्त किन्नो, नीबू, अमरूद के उत्तम गुणवत्ता के फल इस क्षेत्र में उन्नत विधियो द्वारा पैदा किए जा सकते है। इसके अतिरिक्त यहां की स्थानीय वनस्पतियों जैसे कि कैर, सांगरी, लसोडा, पीलू, इत्यादि में भी सुधार करके व्यावसायिक उत्पादन लिया जा सकता है जो सूखे की परिस्थितियो में भी अच्छा उत्पादन देने के सक्षम है।

**उन्नत किस्में**

शुष्क क्षेत्र में बाग विकास के लिये उपयुक्त फल एवं उन्नत किस्मों के चयन पर विशेष ध्यान देना चाहिए जिसे कि बेर की गोला, सेव, मुंडिया, उमरान, कथेली, बनारसी, कड़का, थार सेविका, थार भुजराज, गोमाकीर्ति, ऑवले की एन.ए. 7(नीलम), कृष्णा, कंचन, चकैया, एन.ए. 6 (अमृत), गोमा ऐश्वर्य, बेल की एन.बी. 5 , एन.बी. 9, गोमा राशि, सीआईएसएच, बेल–1 एवं बेल–2, अनार की जालौर सीडलैस मृदुला, गणेश, जी 137, फुले अरक्ता, भगवा एवं खजूर की हलावी, बरही, मेडजूल, जाहिदी, शामरान, खुनेजी, किस्में उत्पादन एवं गुणवत्ता में अचछी पाई गई है।

स्वास्थानिक (इन–सीटू–बडिगं ) विधि द्वारा कम वर्षा क्षेत्र में बाग स्थापित करना उपयुक्त पाया गया है। जल संरक्षण एवं बाग प्रबंध की उन्नत तकनीकों को अपनाकर अधिक

उत्पादन एवं अच्छी गुणवत्ता के फल प्राप्त किये जा सकते है। पौधों को उचित दूरी 6 से 8 मीटर पर लगा कर अच्छी तरह देखभाल करना चाहिए। बाग में प्लास्टिक/सूखी पत्तियॉ/भूसा पुआल इत्यादि का पलवार बिछाकर नमी संरक्षण व खरपतवार नियंत्रण द्वारा भी फलोत्पादन में बढोतरी की जा सकती है। फलदार पौधों का उचित आकार देने के लिए समय पर कटाई छटाई करना चाहिए जैसे कि बेर में प्रति वर्ष गर्मियो में कटाई–छंटाई की जाती है। जिससे अच्छी गुणवता के फल प्राप्त होते है।

फलदार वृक्षों में सुखा सहने की क्षमता होती है। सूखा पडने तथा रोग लगने पर फसले खराब हो जाती है ऐसे में बाग से कुछ न कुछ उत्पादन, चारा लकड़ी इत्यादि अवश्य मिलता हैं। भूमि संरक्षण के लिए भी वृक्ष बहुत उपयोगी है।

शुष्क क्षेत्र में फल उत्पादन की गुणवत्ता श्रेष्ठ होने के कारण भविष्य में उत्पादों के निर्यात भी संभावानाऐ है। बागवानी फसले जैसे कि सूखा सहिष्णु बेर, गुंदा, ऑवला, बेल, इत्यादि सूखा के प्रति बीमित (इन्श्योरड) फसले है क्योंकि अन्य फसले सूखे की स्थिति में उत्पादन न दे पर इनसे आशाजनक उत्पादन तथा पशुधन के लिए पौष्टिक चारा तो मिल ही जाता है। जिससे अकाल के समय में भी किसान को जीवन ज्ञापन हेतु मदद मिल जांती हैं।

नए स्थापित बागों से प्रारंभिक वर्षो में कम फसल मिलती है ऐसी स्थिति में कतारों के बीच खाली भूमि में फसलें उगाने से अतिरिक्त आय तथा भूमि का समूचित उपयोग के साथ–साथ इसकी जल धारण क्षमता एवं भौतिक दशा में सुधार होता है। बहुमंजिली फसल प्रणाली अपनाने से प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन एवं आय मिलती हैं अल्प अवधि में अधिक उत्पादन देने वाली अन्तः फसलें जैसे दलहनी, मसाले, फल, औषधीय फसलें उगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उपज करने के लिए बेर की दो पंक्तियों में दलहनी फसलों जैसे मूंग,मोठ व ग्वार को सफलतपूर्वक लगाया जा सकता है। बाग के पूर्ण फलत में आने के बाद अन्तः फसलें उगाना बन्द कर देना चाहिए। फल वृक्षों के साथ साथ कई प्रकार के उपयोगी एवं पौष्टिक घास भी उगा सकते है जिससे पशुओं के लिए वर्ष भर चारा उपलब्ध होता रहता हैं कम वर्षा क्षेत्र में बेर या गुंदा के साथ कतारों की बीच वाली जमीन में धामण घास उगाना (उद्यान–चारागाह–पद्धति) लाभप्रद पाया गया है।

**खादय पदार्थ के रूप में**

ऐसा अनुमान है कि यदि प्रदेश में कुपोषण से निपटा जाना है तो फसलो का उत्पादन आने वाले बीस वर्षो में लगभग पॉच गुणा बढाना पडेगा। अतः इस क्षेत्र की जनसंख्या को संतुलित आहार प्रदान करने के लिए इस और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। फल वृक्षों की खेती से पौष्टिक फल, चारा तथा अन्य उपयोगी वस्तुऐं प्राप्त होती है। फलों का सेवन स्वस्थ्य

शरीर व विकास के लिए जरूरी है। कई रोगो के निदान में फलों के सेवन की अहम भूमिका होती है। फलों से प्रचूर मात्रा में विटामिन, खनिज, शर्करा, आदि मिलते है। इसे जीवन रक्षक खाद्य भी माना गया है। फलों के सेवन से शक्ति (ऊर्जा) प्राप्त होकर शरीर बलवर्धक होता है। खजूर फल के सेवन से अत्याधिक कैलोरी उर्जा प्राप्त होती है। खाड़ी के देशों में प्रति व्यक्ति खजूर की खपत लगभग 6.4 किलोग्राम/वर्ष है । फलों का पोषण में अत्यधिक महत्व है क्योकि इनमे प्रचुर मात्रा में विटामिन्स व खनिज तत्व मिलते है।

**तालिका –1 फलों से पोषक तत्व प्रति (100 ग्राम फल खाने योग्य भाग में)**

| फल | विटामिन (ए) (आई.यू.) | विटामिन (बी) (मिग्रा) | विटामिन (सी) (मिग्रा.) | कैल्शियम (प्रतिशत) | फॉस्फोरस (प्रतिशत) | लौह (प्रतिशत) | ऊर्जा (कैलोरी) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ऑवला | – | 30 | 600 | 0.05 | 0.02 | 1.20 | 59 |
| अनार | – | – | 600 | 0 01 | 0.07 | 0.30 | 65 |
| बेर | 186 | 12 | 15 | 0.03 | 0.05 | 0.30 | 129 |
| करौदा | – | – | 200–500 | 0.16 | 0.06 | 39.01 | 364 |
| अंजीर | 270 | – | 3 | 0.06 | 0.03 | 1.20 | 75 |
| सीताफल | – | – | – | 0.02 | 0.04 | 1.00 | 105 |
| बेल | 240 | – | – | 0.09 | 0.01 | 0.60 | 23 |

### औषधीय महत्व

फलों में अनेक औषधीय गुण पाये जातें है जैसे– बेल का शरबत गर्मी में शीतलता देने के अलावा दस्त, पेचिस एवं पेट के विकारो के लिए अचूक औषधि है। बेल की छाल, पत्ती कई आयुर्वेदिक औषधी निर्माण में काम आती है। इसी प्रकार ऑवला अत्यधिक विटामिन सी युक्त पौष्टिक, शक्ति – वर्धक च्यवनप्राश का मुख्य घटक है। ऑवला के फल एवं उत्पाद के सेवन से विटामिन सी की पूर्ति होती है तथा दंत रोग में लाभ होता है। विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों एवं घरेलू उपचार में फल व सब्जियों का प्रयोग किया जाता हैं। आंवला का प्रयोग तेल, त्रिफला चूर्ण, च्यवनप्राश, आदि में किया जाता है। विविध प्रकार के फलों का प्रयोग प्रसाधन सामग्री निर्माण में भी किया जाता है। फलों का रस मुख्य रूप से रोगियों के आहार के लिए होता है। सुपाच्य एवं पौष्टिकता से भरपूर होने के कारण ही इसकी अनुशंसा की जाती है।

### आर्थिक महत्व

विश्व में फलोत्पादन के क्षेत्र में भारत का दूसरा स्थान है। वर्तमान में लगभग 4.96 मिलियन हेक्टेयर बागवानी क्षेत्र से कुल फलों का लगभग 49.29 मिलियन टन पैदावार होता है। फल

उत्पादन बढने से पोषक खाद्य पदार्थो की उपलब्धता, रोजगार के अवसर, आय के स्त्रोत एवं निर्यात की सम्भावनाएँ भी बढेगी। खाद्यान्नो की तुलना में फलो की खेती से प्रति हेक्टेयर आय अधिक प्राप्त होती है तथा प्रति इकाई क्षेत्रफल में एक वर्ष में अधिक रोजगार दिवसों का सृजन होता है। विभिन्न ताजे फलों व उनके उत्पादों से विदेशी मुद्रा अर्जित होता हैं। फलों की विश्व निर्यात बाजार में हमारे देश की भागीदारी लगभग 0.3 प्रतिशत है। हमारे देश से हाने वाले कुल बागवानी के निर्यात में ताजे फलो का योगदान 11 प्रतिशत है। जिसमें से 60 प्रतिशत योगदान आम एवं अंगूर का है। वर्तमान में शुष्क क्षेत्रीय फलों मे अनार का महाराष्ट्र, राज्य से निर्यात होता है।

राजस्थान प्रदेश में लगभग 0.54 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से 5.94 लाख टन प्रति वर्ष फल का उत्पादन होता है। बेर, ऑवला, अनार, गोदा इत्यादि फल वृक्ष के क्षेत्र में निरन्तर बढोतरी हो रही हैं। वर्ष 2002--2003 में अनार का क्षेत्र 382 हे, से बढकर 439 हेक्टयर हुआ है। वर्तमान में राज्य में आंवला के क्षेत्रफल में बढोतरी दर्ज की गई है। परन्तु इसके प्रसंसकरण के उपर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। अभी कई महत्वपूर्ण फल जैसे– खजूर, इमली, बेल तथा नीबू वर्गीय है। जिनके उतपादन क्षेत्र में वृद्दि की और अधिक सम्भावनाएं है। जहॉ सिंचाई के साधन है वहां किन्नों की बागवानी के क्षेत्र में निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। किन्नू फल के निर्यात की अपार सम्भावनाएं है। पिछले दो वर्षो में शुष्क क्षेत्र में खजूर के बाग विकास में भी बढोतरी हुई है। उदाहरण के रूप में शुष्क क्षेत्र में उगने वाल खजूर के उत्पादन में बढोतरी करके पिंड खजूर व छुआरा के आयात पर व्यय होने वाली विदेशी मुद्रा को बचाया जा सकता हैं फल वृक्षो से फलों के अतिरिक्त ईधन, इमारती, लकड़ी, तेल, गोंद, इत्यादि भी मिलती है। इन फसलो पर आधारित कई प्रकार के लघु उद्योग स्थापित किए जा सकते है जैसे फल– सब्जी–मसाला परिरक्षण एवं संशोधन उद्योग जिसमें मसालें,अचार,चटनी,सूखे पाउडर, मुरब्बा, कैण्डी इत्यादि आते है। इन उद्योगो से कई अन्य सह उद्योग जैसे कांच, प्लास्टिक, लकड़ी, टिन कंटेनर, डिब्बा बन्दी, मोंम उद्योग, इत्यादि को भी बढावा मिलता है जिससे ग्रामीण अंचल में रोजगार के अवसर भी बढेंगे। ग्रामीण क्षेत्र में औद्योगिक इकाईयो की स्थापना से प्रदेश की विकास दर मजबूत होगी।

**सामाजिक उत्थान में**

ग्रामीण क्षेत्र में आय की दृष्टि से सामाजिक स्तर को सुधारने में भी बागवानी का महत्वपूर्ण योगदान हैं। फलदार पौधों से प्रति एकड़ उपज दूसरी फसलें की तुलना में अधिक होती है। प्रति एकड़ उपज बढ़ने पर अधिक आमदनी भी प्राप्त होती है और वर्ष भर कार्य के अवसर उपलब्ध होते रहतें है। शुष्क बागवानी विकास से किसान को अपने उत्पाद के विपणन में भी लाभ होगा और उपज का सही मूल्य भी मिलेगा। जब विभिन्न प्रकार के फल व सब्जियों

की खेती में बढ़ोतरी होगी तो मांग के अनुसार उचित दर से फल–सब्जी सुलभ हो सकेंगे। ग्रामीण विकास से लोगो का शहरो की और पलायन भी रूकेगा। शुष्क क्षेत्र में फूलों एवं अलकृंत पौधो की खेती से पर्यटन उद्योग को भी बढ़ावा मिलेगा। फलोत्पादन, नर्सरी, बीज उत्पादन तथा अन्य सहयोगी कुटीर उद्योग विकसित होंगे जिनसे रोजगार के अवसर बढेंगे साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में स्वालम्बन बनने की दिशा मे भी लाभ होगा।

**पारिस्थितिक विकास में**

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या दिनों–दिन विकराल रूप लेती जा रही है जो एक चुनौती है। परती एवं बंजर भूमि विकास एक विकट समस्या है। इन दोनो ही स्थितियों में बागवानी विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। विभिन्न परिस्थितियो के लिए चुनिंदा बागवानी वाली फसलें लगा कर इन समस्याओं का कुछ हद तक समाधान ही नहीं अपितु सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के अवसर भी विकसित किये जा सकते है। शुष्क क्षेत्र में वनस्पतियां कम पायी जाती है। एसे में फलदार पौधे लगाकर पर्यावरण की सुरक्षा की जा सकती है जिससे स्वच्छ व शुद्व वातावरण के अलावा पौष्टिक फल व अन्य कई प्रकार की वस्तुएं प्राप्त की जा सकती है।

फलदार पौधो की धार्मिक महत्वता भी है। इसी कारण फल वृक्षो जैसे– आंवला, खेजड़ी, केला आदि की पूजा की जाती है। वृक्षों की पूजा– पाठ का वर्णन अनेक साहित्यों में मिलता है। आज के परिपेक्ष में इनकी महत्ता हमारे लिऐ प्राण वायु प्रदाता के रूप में है जो बढ़ते प्रदूषण के कारण दूषित हुए वातावरण से हमारे स्वास्थय की रक्षा करते है। सर्वविदित है कि मनुष्य को स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ व शुद्व वातावरण की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार देश के शुष्क व अर्द्व शुष्क क्षेत्रों में आर्थिक स्थायित्व के लिए ही नही वरन् उनकी सामाजिक उन्नति के लिए भी शुष्क बागवानी का विकास करना आवश्यक है क्योकि अच्छे स्वास्थ के लिए संतुलित आहार में फलों का समावेश नितांत आवश्यक है। अतःशुष्क क्षेत्र के विकास के लिए शुष्क बागवानी का कोई विकल्प नहीं है इस के उपर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। इससे देश में एक नई सुनहरी क्रान्ति आयेगी।

देश में उद्यानिकी विकास के लिए केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय बागवानी मिशन की स्थापना की है। जिससे फलोत्पादन बढ़ने तथा कुपोषण मिटाने में भी मदद मिलगी। इससे किसानो के सामाजिक व आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। फल एवं इसके उत्पादों के निर्यात बढने से देश की आर्थिक स्थिति में भी उल्लेखनीय सुधार हो सकेगा। इस प्रकार उन्नत तकनीकों के प्रयोग द्वारा विभिन्न फलों की पैदावार स्थानीय तकनीकों की अपेक्षा 20 से 60 प्रतिशत तक अधिक तक प्राप्त की जा सकती है।

***

# शुष्क क्षेत्रों में फलों की बागवानी की तकनीक

प्रमोद कुमार यादव
*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

यह बात सर्वमान्य है कि दिन–प्रतिदिन देश की जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है, वर्तमान में देश की आबादी 1 अरब पहुंच चुकी है। इतनी अधिक जनसंख्या की फलाहार की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये फल उत्पादन को बढ़ाने की जरूरत है पिछले 5 वर्षों में फल उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई है। भारत का फल उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है परन्तु प्रतिव्यक्ति फल उपभोग दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है, दूसरी तरफ आज के विकासशील भारत में फल की मांग लगातार बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप फसल विविधीकरण पर विशेष जोर दिया जा रहा है जिसके कारण पिछले दशक में फल आधारित भूमि का विस्तार 4% प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ रहा है। इस समय विश्व के कुल आम उत्पादन का 65% तथा केला उत्पादन का 11% भाग अकेले भारत ही में पैदा होता है तथापि आम आदमी को फल की वांछित मात्रा की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए प्रतिदिन 120 ग्राम फलों की आवश्यकता होती है परन्तु 40 ग्राम मात्रा ही उपलब्ध हो पा रही है। भारत सरकार की नई कृषि नीति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम पोषण आवश्यकता को पूरा करने के लिये यह निर्देश दिया जा रहा है कि आसानी से एवं कम कीमत पर उपलब्ध होने वाले फलों (बेर, आंवला, केला, इत्यादि) में ही वैज्ञानिक तरीके से विटामिन 'ए', आयरन एवं प्रोटीन की मात्रा को सामान्य से अधिक स्तर तक लाया जाये। इसके लिये शुष्क क्षेत्रों में शुष्क बागवानी को बढावा देना होगा। शुष्क बागवानी के अन्तर्गत उगाये जाने वाले फल पोषक तत्वों से भी भरपूर होते हैं।

इस समय देश का लगभग 12 प्रतिशत भू–भाग शुष्क क्षेत्रों के अन्तर्गत आता है इस क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत भाग या तो कृषि योग्य नहीं है या परती भूमि में आता है। यह भू–भाग लगभग दो करोड़ हैक्टेयर है जिसमें बागवानी विकास की विपुल संभावनाएं हैं। राजस्थान का तो लगभग दो तिहाई क्षेत्र ऐसा है जो बागवानी के लिये आज के परिप्रेक्ष्य में और अधिक महत्व रखता है अब अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की स्थिति नहीं है क्योंकि दिन प्रतिदिन जल स्त्रोत घटते जा रहे हैं। अकाल का भी कई वर्षों तक लगातार किसान को सामना करना पड़ता है। इन परिस्थतियों में शुष्क बागवानी को अपनाना ही किसानों को आय का स्त्रोत हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रदेश में रहने वाली जनसंख्या के सर्वांगीण विकास के लिए तथा मरू भूमि को और अधिक अनउपजाऊ होने से बचाने के लिये भी इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

राजस्थान प्रदेश में लगभग 21 हजार हैक्टेयर क्षेत्रफल से 240 हजार मैट्रिक टन फल का उत्पादन होता है। इसी प्रकार 1 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 4 लाख मैट्रिक टन सब्जियो की पैदावार होती है। मरूस्थलीय और शुष्क क्षेत्र में प्रचण्ड ताप, सौर विकिरण तथा बहुत कम वर्षा व कम वातावरणीय नमी होती है। इन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन भी नगण्य है। इन प्रतिकूल परिस्थतियों में कृषि करना बहुत कठिन कार्य है। उसमें में उद्यानिकी फसलों को उगाना और भी कठिन कार्य है। आज हमारी आवश्यकता है कि जलवायु संसाधनों का समुचित उपयोग तथा उन्नत उद्यानिकी तकनीक अपनाकर इस प्रदेश में फल उत्पादन को एक लाभदायक व्यवसाय बनाया जाए।

वर्तमान समय में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद व राजस्थान सरकार की तरफ से बेर, आंवला, खजूर, बील, शहतुत, फालसा, करौंदा, इमली, इत्यादि के अतिरिक्त किन्नो, नींबू, अमरूद के उत्तम गुणवत्ता के फल इस क्षेत्र में उन्नत विधियों द्वारा पैदा करने के प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यहां की स्थानीय वनस्पतियों जैसे कि कैर, सांगरी, लसोड़ा, पीलू इत्यादि में भी सुधार करके व्यवसायिक उत्पादन लिया जा सकता है, जो सूखे की परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देने में सक्षम है तथा इसकी गुणवत्ता भी अच्छी होने के कारण भविष्य में उत्पादों के निर्यात की व्यापक सम्भावनाएं हैं क्योंकि यह फसलें सूखा के प्रति सहिष्णु होती है।

**फल क्षेत्रों का चुनाव :**

मरूक्षेत्र के अन्तर्गत बहुत सारे जिले आते हैं जिनमें कुछ में पानी की सुविधा पर्याप्त है तथा कुछ में सीमित नहरी पानी है तथा कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां नहर का पानी नहीं है वह क्षेत्र या तो ट्यूबवेल द्वारा सिंचित होते हैं या वर्षा आधिारित हैं। इन क्षेत्रों को वर्षा की मात्रा के अनुसार चार क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है।

1. बहुत कम वर्षा में उगाये जाने वाले वृक्ष : कैर, बेर, गोन्दा ।
2. कम वर्षा में उगाये जाने वाले वृक्ष : करौंदा, अनार, अमरूद, सीताफल
3. अधिक नमी द्वारा फल वृक्षों का उगाना : आंवला, नींबू
4. शुष्क जलवायु के लिये उपयुक्त परन्तु सिंचाई चाहिये : फालसा, शहतूत, अंजीर, खजूर, संतरा,मालटा, मौसमी, किन्नों आदि।

**शुष्क क्षेत्रों के लिये उन्नत किस्में :**

शुष्क क्षेत्रों में अधिक तापमान होने के कारण कुछ किस्मों को ही चिन्हित किया गया है जो इस क्षेत्र में अच्छी फलती--फूलती हैं जिसके फलस्वरूप इन किस्मों से अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

**बेर** : गोला (अगेती), सेव (मध्यम), उमरान (पछेती)

**आंवला** : बनारसी, चकैया तथा एन.ए.–7

**अनार** : गणेश, जालौर सिडलैस, मृदुला

**बेल** : एन.ए.–5, एन.ए.–9

**नींबू वर्गीय पौधे** : किन्नो, मौसमी, मालटा, ब्लड रैड

**फालसा** : शर्बती

**कैर** : स्थानीय प्रजाति

**गोन्दा** : बड़े आकार की स्थानीय किस्में

**बाग विकसित करने की तकनीक :**

शुष्क फलों में यदि उनके स्थाई स्थान पर ही मूलवृन्त उगाया जाय तो वह अधिक उपयुक्त होता है, इसके लिये खेत में उपयुक्त स्थान पर गड्डे खोद कर बीजों को उगाया जा सकता है अथवा वहां मूलवृंत्त को रोपित किया जा सकता है । इस तकनीक को अपनाने से पौधे की जड़ें अधिक वृद्धि करती है तथा वहां नीचे की तरफ भी अधिक जाती है । इस तरह से तैयार पौधें को पानी की कम आवश्यकता होती है । जब यह मुलवृन्त एक वर्ष के हो जाते हैं तो उपयुक्त समय पर इनमें बड़िंग कर दी जाती है जैसे बेर व आंवला में जुन–जुलाई, बील में जून–जुलाई, नींबू वर्गीय पौधें में फरवरी–मार्च तथा सितम्बर–अक्टूबर, गोन्दा में जुलाई–अगस्त इनसीटू बडिंग के लिए उपयुक्त समय है। इस विधि से तैयार किये गये पौधे जल्दी वृद्धि करते हैं तथा पौधों का जीवित प्रतिशत भी अधिक होता है। यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अति उपयुक्त है।

**फल वृक्षों के रोपण की दूरी तथा खाद एवं उर्वरक**

| फल का नाम | गड्डे का आकार (मी.) | दूरी(मीटर) | पौध लगाने का समय | खाद एवं उर्वरक प्रति पौधा 1 वर्ष के पौधे के लिए | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | गोबर (किग्रा.) | नत्रजन (ग्राम) | फॉस्फोरस (ग्राम) | पोटाश (ग्राम) |
| 1. बेर | 1X1X1 | 6X6 | जुलाई–सितम्बर | 10 | 100 | 50 | 50 |
| 2. आंवला | 1X1X1 | 8X8 | जुलाई–अगस्त | 10 | 40 | 20 | 30 |
| 3. अनार | .75X 75X.75 | 5X5 | जनवरी–फरवरी | 10 | 150 | 75 | 75 |
| 4. बेल | 1X1X1 | 8X8 | जुलाई–अगस्त | 10 | 30 | 30 | 50 |
| 5. नींबू | .75X.75X.75 | 5X5 | जुलाई–अगस्त | 10 | 120 | 60 | 80 |
| 6. मौसमी | .75X.75X.75 | 6X6 | जुलाई–अगस्त | 10 | 120 | 60 | 80 |
| 7. किन्नों | 1X1X1 | 7X7 | जुलाई–अगस्त | 10 | 140 | 75 | 100 |
| 8. फालसा | .50X.50X.50 | 5X5 | जुलाई–अगस्त | 20 | 50 | 30 | 30 |
| 9. कैर | .75X.75X.75 | 6X6 | जुलाई–अगस्त | 20 | 50 | 30 | 30 |
| 10. गोन्दा | .75X.75X.75 | 6X6 | जुलाई–अगस्त | 10 | 100 | 125 | 50 |

उपरोक्त दी हुई बेर की मात्रा को 5 वर्ष तक बढ़ाते रहते हैं। 5 वें वर्ष की ही मात्रा को आगे के वर्षों मे दिया जाता है। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस, पोटाश तथा गोबर की खाद की पूरी मात्रा जुलाई में देनी चाहिये तथा शेष बची हुई नत्रजन की मात्रा को सितम्बर माह में दिया जाता है।

आंवला के लिये प्रथम वर्ष में बताई गई मात्रा को आगे के प्रत्येक वर्ष मे बढ़ाकर इसे 10 वें वर्ष तक बढ़ाया जाता है। दसवें वर्ष की मात्रा को ही आगे के वर्षों में दिया जाता है इसके साथ–साथ आंवले में 0.6 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव भी सितम्बर माह में करना चाहिये।

नींबू वर्गीय पौधों में उपरोक्त दी गई मात्रा को एक वर्ष के पौधे को देते हैं। यह मात्रा दूसरे वर्ष में दुगनी कर दी जाती है तथा तीसरे वर्ष में पहले वर्ष की मात्रा जोड़ देते हैं इस प्रकार पांचवें वर्ष की मात्रा गोबर की सड़ी हुई खाद 50 किग्रा, नत्रजन 600 ग्राम, फोस्फोरस 300 ग्राम तथा 400 ग्राम पोटाश को आगे के वर्षों में दिया जाता है। शुष्क क्षेत्रों में अधिक पी. एच. मान 8.2–8.4 होने के कारण लोहा, जिंक तथा बोरोन पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता है इसलिये नीबूं वर्गीय पौधों में वर्ष में तीन बार 0.4–0.6 प्रतिशत जिंक सलफेट तथा फेरस सल्फेट तथा 0.1 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव किया जाना चाहिये।

अनार के पौधें में उपरोक्त मात्रा को प्रत्येक वर्ष जोड़कर 4 वर्षों तक देते हैं तथा चौथे वर्ष की मात्रा को ही आगे के वर्षो में दिया जाता है, उपरोक्त उर्वरकों की पूर्ण मात्रा आधी नत्रजन को छोड़कर जुलाई के प्रथम सप्ताह में देते हैं, तथा शेष नत्रजन मात्रा को फल बनने के समय दिया जाता है इसके अलावा फेरससल्फेट, मैगनिज सल्फेट, बोरेक्स तथा जिंक सल्फेट प्रत्येक 0.3 प्रतिशत फूल आने के एक माह पूर्व, फूल आने पर तथा तीसरा छिड़काव फल बनने पर किया जाता है।

बेल के लिये उपरोक्त दी गई तालिका की मात्रा प्रत्येक वर्ष जोड़ी जाती है तथा 10वें वर्ष में 100 किग्रा गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम नत्रजन, 300 ग्राम फोस्फोरस तथा 500 ग्राम पोटाश देनी चाहिये। यही मात्रा आगे वर्षो में प्रदान की जानी चाहिये। गोबर की खाद व फोस्फोरस की पूर्ण मात्रा आगे वर्षों में प्रदान की जानी चाहिये। गोबर की खाद व फोस्फोरस की पूर्ण मात्रा, नत्रजन व पोटाश की आधी मात्रा जुलाई अगस्त में दी जाती है। नत्रजन व पोटाश की शेष मात्रा को जनवरी–फरवरी में दिया जाना चाहिये।

फालसा तथा कैर में उपरोक्त तालिका बताई गई मात्रा को प्रत्येक वर्ष देना चाहिये। फालसा में यह मात्रा कटाई–छटाई के बाद फरवरी में देनी चाहिये। इसके अलावा फालसा में यदि जिंक सल्फेट तथा फैरस सल्फेट का छिड़काव 0.4 प्रतिशत का किया जाता है। फलों का आकार व रस की मात्रा बढ़ जाती है।

गोन्दा या लसोड़ा के पौधों में उपरोक्त बताई हुई खाद की मात्रा प्रथम वर्ष में दी जाती है। इसी मात्रा को जोड़ते हुए तीसरे वर्ष की मात्रा को ही आगे के वर्षो में दिया जाता है।

**पौध रोपण व गड्ढे खोदना :**

सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि उद्यान का उपयुक्त रेखांकन किया जाय। रेखांकन के पश्चात फलों की आवश्यकतानुसार दूरी पर उपयुक्त आकार के गड्ढे मई के अन्तिम सप्ताह अथवा जून के प्रथम सप्ताह में तैयार कर लेने चाहिये जिससे गर्मी के दिनों हानिकारक जीवाणु मिट्टी में से खत्म हो जायें। पौध रोपण से एक माह पूर्व इन गड्ढों में 20 किग्रा गोबर की खाद, 200–300 ग्राम फोस्फोरस एवं 250–300 ग्राम पोटाश तथा 50 ग्राम मिथाईल पैराथियान का मिश्रण मिट्टी के साथ बनाकर गड्ढे को भर देना चाहिये। इसके बाद वर्षा ऋतु के आरम्भ में कलम द्वारा तैयार पौधों को गड्ढे के ऊपरी सतह के बीचों–बीच विधिवत बिठाते हुए लगा देते हैं तथा जड़ के पास मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देते हैं इसके तुरन्त बाद सिंचाई कर देते हैं।

**वायुवृत्ति :**

मरूक्षेत्र में हवायें तेजी से बहती है गर्मी के दिनों में गर्म हवायें व सर्दी के दिनों के सर्द हवायें फलन पर तो प्रतिकूल प्रभाव डालती है साथ ही साथ यह हवायें पौधों को भी नुकसान पहुंचाती है। वायुवृत्ति में अधिक ऊंचाई तक बढ़ने वाले पौधें को काम में लाया जाता है ये पौधे अपनी ऊंचाई से चार गूना दूरी तक इन हवाओं से पौधों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं यदि इनकी ऊंचाई 30 मीटर है तो आगे 120 मीटर तक या लगभग 20 पत्तियों के पौधों की रक्षा इनके द्वारा की जा सकती है वायुवृत्ति में दो लाइन को 3 मीटर की दूरी पर लगाना अतिउत्तम पाया गया है। लाइनों के अन्दर पौधों को 6 मीटर की दूरी पर लगाते है। वायुवृत्ति से 3 मीटर बगीचे के तरफ 50 से.मी. गहरी खाई खोद देनी चाहिये जिससे वायुवृत्ति के पौधो की जडें बगीचे की तरफ पानी व पोषक तत्वो के लिये नही जाये। शुष्क क्षेत्रों के लिये गोन्दा, नीम, शीशम आदि पौधे वायुवृद्धि के लिये उपयुक्त हैं।

**जल प्रबन्धन :**

असीचिंत क्षेत्र में वर्षा ऋतु में बाग में जल संरक्षण करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है इसके लिये पेड़ों की पंक्ति के दोनों ओर की भूमि पर 5 % ढलान दिया जाता है जिससे कि वर्षा जल पेड़ के तने को दोनों और इकट्टा होता रहे। यह इस लिये भी आवश्यक है कि मरूक्षेत्र की भूमि बलुई–दोमट है जिनसे पानी वर्षा के तुरन्त बाद नीचे चला जाता है इन भूमियों में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी कम है तथा जल अवशोषण रोकने की क्षमता भी कम है। मरू क्षेत्रों में जल के उचित प्रबन्ध के लिये यह भी आवश्यक है कि हम पलवार का उपयोग करें, प्राकृतिक पलवार के लिये हम पौधों के चारों तरफ बुई, खींफ, सूखी हुई घासों को बिछा दें इससे पानी का वाष्पीकरण तो रूकेगा ही साथ ही साथ मृदा में नमी अधिक दिनों तक बनी रहेगी। यह पलवार भूमि में कार्बनिक पदार्थ भी बढ़ाती है व मृदा का तापक्रम भी नियंत्रित करती है

जिससे मृदा में पाये जाने वाले जीवाणु अपनी क्रियाशीलता सुगमता पूर्वक करते हैं। कार्बनिक पलवार के अलावा पोलिथिन का उपयोग भी पलवार के रूप में नमी संरक्षण करने में बहुत उपयोगी है। इस कार्य के लिये काली पोलोथिन 50 से 100 माईक्रोन की उपयोग मे लाई जाती है।

मरूक्षेत्र में पानी की कमी को देखते हुए बूंद–बूद सिंचाई विधि अति उपयोगी है। इस विधि द्वारा एक दिन छोड़कर पानी देना पर्याप्त होता है। पानी की इतनी मात्रा प्रयोग में लाई जाय की वह पेड़ के थाले में 20 प्रतिशत क्षेत्र को गीला करने के लिये पर्याप्त हो। पानी की अधिक कमी होने पर मटका विधि को प्रयोग में लाया जा सकता है इस विधि में मटके को पौधे के पास ही गाढ़ दिया जाता है तथा उसमें बारीक छिद्र कर दिया जाता है। मटके को ढकन से ढक दिया जाता है इस प्रकार पानी छिद्र में रिसता रहता है तथा पौधे को उपलब्ध होता रहता है जब मटके में पानी खत्म हो जाता है तो उन्हें फिर से भर दिया जाता है। पौधे का आकार बढ़ने पर मटकों की संख्यां भी 3 तक बढाई जा सकती है।

**कटाई–छंटाई :**

बेर में जमीन से 70 सेमी. की ऊंचाई तक कोई शाखा नहीं निकलने देनी चाहिये। उसके बाद 3–4 शाखाओं को रखा जाता है। बेर में प्रतिवर्ष कटाई–छंटाई करना आवश्यक होता है। कटाई–छंटाई के लिये पश्चिमी राजस्थान में मई के प्रथम सप्ताह में कटाई–छंटाई की जानी चाहिये। यह कटाई–छटाई 25 कलियां छोड़कर अथवा पुरानी काट पर की जाती है यदि कटाई–छंटाई समय पर नहीं की जाती है तो उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। कटाई करने से 3–4 दिन पूर्व पौधें पर थायोयूरिया एवं पोटेशियम नाईट्रेट के घोल का छिड़काव करने से मुख्य तनों से सर्वाधिक नई शाखायें निकलती है।

अनार से अच्छा फलोत्पादन लेने के लिये भूमि की सतह से ही 3–5 मुख्य तने बनने देना चाहिये। इससे पौधे अधिक ऊंचे नहीं जा पाते हैं तथा फलों की तुड़ाई एवं छिड़काव करने में आसानी रहती है। शुष्क क्षेत्रों में अनार से वर्षा ऋतु में आने वाले फूलों से ही फलत लेनी चाहिये जिसे मृग बहार भी कहा जाता है। फालसा के पौधों पर भी बेर की तरह नई शाखाओं पर फल लगते हैं। फालसे के पौधों को जमीन से 100 सेमी. छोड़कर जनवरी माह में काटते हैं। काटने के बाद पौधों से नई शाखाएं निकलती है जिन पर फूल व फल लगते हैं। किन्नों, मौसमी, मालटा को उचित आकार देने के लिये काट–छांट की जाती है इसके बाद काट–छांट केवल सूखी शाखाओं, रोगग्रस्त व आपस में उलझी हुई शाखाओं की जाती है परन्तु नींबू में काट–छांट वर्ष में एक बार अवश्य की जानी चाहिये। जिससे नींबू के बीच के भाग को पर्याप्त प्रकाश उपलब्ध होता रहे। नीबू की जड़ भी अधिक मात्रा में बढ़ जाती है उसके लिये नींबू की 15–20 सेमी. गहरी खुदाई जनवरी–फरवरी में करनी चाहिये। जिससे अधिक विकसित हुई रेशा जड़ें कटकर अलग हो जाये।

***

# फलदार पौधों का प्रवर्धन एवं रोपण

हनीफ खान
*केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर*

फल वृक्षों के उद्यान बहुत प्राचीन काल से स्थापित होते रहे हैं फिर भी भारत में फल उत्पादन का स्तर पर्याप्त नहीं है। सफल बागवानी हेतु उन्नत किस्मों के पौधे उद्यान में लगाने चाहिये। उन्नत किस्मों के अधिक पौधें तैयार करने की जानकारी व प्रशिक्षण प्राप्त करके भी अच्छी आय अर्जित की जा सकती है। फल वृक्षों को प्रवर्धित करने की भिन्न–भिन्न पौधें में भिन्न–भिन्न विधियां है। इनके अधिक संख्या में उन्नत किस्मों के पौधे तैयार करने की प्रक्रिया बीजीय फसलों के बीज उत्पादन से भिन्न है। इसमें दक्षता प्राप्त करने के लिये अभ्यास व अनुभव प्राप्त करना होता है। पौधों को प्रवर्धित करने की प्रक्रिया में प्रजनन कला, कलम लगाना, शाखा लगाना व अन्य क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। कुछ फल वृक्षों के पौधे बीज द्वारा भी तैयार किये जाते हैं उदाहरणार्थ नींबू, फालसा, लसोड़ा, पपीता।

अन्य वृक्षों में बीज द्वारा प्रबंधन से वांछित पौधे नहीं प्राप्त होते हैं। इनमें बीज से उत्पन्न पौधे मातृ वृक्ष से भिन्न हो सकते है व फलन भी कलम द्वारा तैयार पौधों की तुलना में देर से लगते हैं। बीज द्वारा प्रर्वधित पौधों की लम्बाई भी अधिक होती है। जिन पर से फल तुड़ाई में परेशानी होती है। बीज परिपक्व तथा अपरिपक्व दोनों तरह के हो सकते हैं। परिपक्व बीज अंकुरित होकर नये पौधों को जन्म देते हैं, परन्तु कुछ पौधों में अपरिपक्व बीजों का निर्माण होता है, इनमें सामान्य तथा भ्रूण नहीं होता है। इस कारण ये नये पौधे बनाने में अक्षम होते हैं। परिपक्व बीज सामान्यतया कठोर तथा मोटा होता है परन्तु अपरिपक्व बीज पतला, कोमल तथा हल्का होता है।

फल वृक्षों के बीजों को प्लास्टिक की थैलियों अथवा छोटे आकार के गमलों में लगाया जा सकता है, इसके लिये एक पात्र में केवल एक ही बीज लगाकर अच्छा पौधा बनाया जा सकता है।

फल वृक्षों में अधिकांशतया अलैंगिक जनन द्वारा अच्छी किस्मों के पौधे अधिक संख्या में तैयार किये जाते हैं। अलैंगिक प्रवर्धन विधियों का विवरण इस प्रकार है।

1. कटिंग द्वारा
2. जड़ों को अलग करके तथा उनके जड़वों द्वारा
3. लेयरिंग विधि

4. बडिंग विधि द्वारा

5. ग्राफ्टिंग विधि द्वारा

**1 कटिंग विधि द्वारा:–**

फलदार पौधो के प्रवर्धन की सबसे सरल एवं लोकप्रिय विधि पौधे की कटिंग विधि हैं जिनमे जड़ अथवा तने की कटिंग ली जाती है। सामान्यतः तने का उपरी हिस्सा जहाँ बहुत सारी टहनियां निकलती है, उस भाग से सख्त टहनियां इस कार्य के लिये उपयुक्त होती है। वर्षा ऋतु अथवा फूल समाप्त होने के पश्चात जब पौधा नई बढत प्राप्त करता है, उस समय छोटी कैची से मुल पौधे जो उत्तम किस्म के हो से कटिंग काट लेनी चाहिए, कटिंग मे कम से कम 3–4 गाठ अवश्य हो तथा एक कटिंग 6 से 12 इंच तक लम्बी हो सकती है। कटिंग को तुरन्त जमीन मे तैयार गड्ढों, या गमलों मे लगाया जाता है। इसके लिए अगर मिट्टी के साथ रेत तथा पतियों की सड़ी हुई खाद काम मे ली जाये तो अच्छे परिणाम देती है। कटिंग लगाने के 15–20 दिन बाद नई पत्तियां निकलना शुरू हो जाती है तथा तीन महीने बाद वो खेत या उद्यान मे पहले से तैयार गड्ढों मे लगा दी जाती है । इस विधि द्वारा अनार बेलपत्र नींबू, अंगूर, जामून, आंवला, अजीर , शहतूत इत्यादि के पौधे व्यापक स्तर पर तैयार किये जा सकते हैं। खजूर के पौधे मातृ वृक्ष के जड़ों के पास निकले जड़वों को अलग करके तैयार किये जाते हैं।

**2. जडो की कटिगं तथा जडवों द्वारा :–**

इस विधि मे पौधो की जडो को अलग करके उपयुक्त माध्यम के साथ लगााया जाये तो प्रत्येक पौधों से सेकड़ों पौधे अल्प अवधि मे तैयार किये जा सकते है। जडों के अलावा तने के कुछ परिवर्तित रूप जो कि सामान्यतया बल्ब, राईजोम, कोर्म, तथा ट्युबर (कंद) के नाम से जाने जाते है, को लगाकर भी आसानी से नये पौधे बनाये जा सकते हैं।

**3. लेयंरिग विधि द्वारा :**

सभी पौधों में कटिंग से नये पौधे नहीं बनते हैं। इन फल वृक्षों के लिए लेयरिंग विधि महत्वपूर्ण है जिससे जल्दी नये पौधे तैयार किये जा सकते हैं। इस विधि में मूल पौधे पर भी जड़े प्राप्त की जाती है तथा जब जड़ अच्छी तरह निकल आती है तब काटकर नया पौध तैयार किया जा सकता है।

लेयरिंग सामान्यतः दो प्रकार की होती है।

**1. जमीन के अन्दर, 2. जमीन के बाहर पौधे के ऊपरी हिस्से में ।**

**1. जमीन के अन्दर :** इस लेयरिंग विधि में परिपक्व पौधे की टहनियां जो मिट्टी के पास वाले स्थान पर निकलती है, उन्हें जमीन में दबाकर इनकी गांठ वाले स्थान पर छोटा सा कट दे

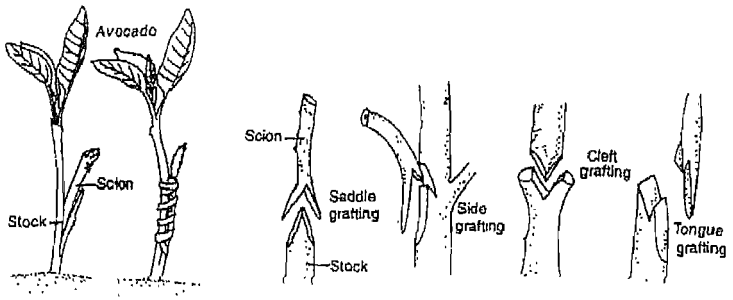


*Fig. 8.15 Types of Grafting.*

चित्र: ग्राफ्टिंग द्वारा पौधों का प्रवर्धन

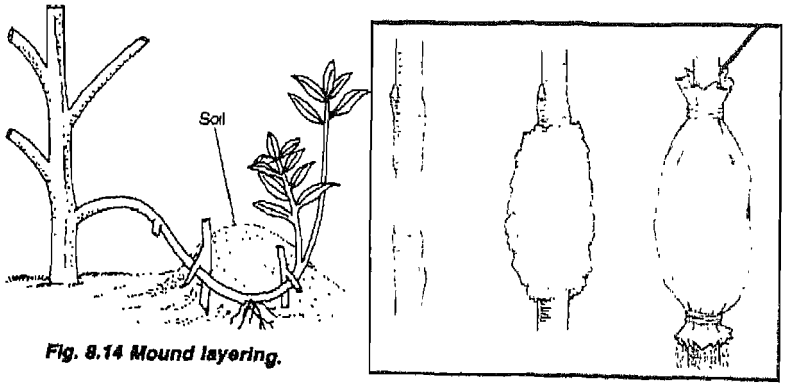


***Fig. 8.14 Mound layering.***

चित्र:लेयरिंग तथा गुट्टी द्वारा पौधों का प्रवर्धन

के पश्चात उपर से मिट्टी डालकर दबा देते हैं। पौधे की बढ़त के साथ दबाई गई टहनी भी बढेगी तथा साथ ही कटे स्थान से जड़े भी निकलेगी। दो–तीन माह के उपरान्त दबाये गये पौधे की टहनी के हिस्से को मूल पौधे से अलग करने पर नई जड़े दिखाई देती है। इनको गमले या नई जमीन पर लगाकर नया पौधा आसानी से तैयार किया जा सकता है।

जमीन के बाहर पौधे के ऊपरी हिस्से की टहनी में नोड (गांठ) के पास लगाकर उस स्थान पर रूट हार्मोन्स तथा मोस लगाकर उस स्थान को प्लास्टिक कवर से बांध दिया जाये तो कुछ समय पश्चात् इस हिस्से से जड़े निकलना शुरू हो जाती है। इस विधि को बागवानी में गुट्टी से भी जाना जाता है। पौधे को अगर नमी प्रदान की जायेगी तो जड़े भी जल्दी निकलेगी। लेयरिंग विधि द्वारा अंगूर, लिची, निम्बू इत्यादि फलदार पौधे अधिक संख्या में तैयार किये जा सकते हैं।

**4. बडिंग विधि द्वारा :**

अच्छी किस्में के उन्नत पौधे प्राप्त करने के लिये बडिंग बहुत ही लोकप्रिय विधि है। इस विधि में उन्नत किस्म के पौधे की बड (आंख) को दूसरे पौधे पर लगाकर नया पौधा बनाया जाता है। बेर की देशी किस्म (बोरड़ी) के पौधे पर अगर उन्नत किस्म की बड़ (आंख) लगा दी जाये तो इसके फुटाने से निकलने वाली शाखा से बनने वाला पौधा उन्नत किस्म का होगा।

बडिंग विधि में जिस पौधे पर बड़ लगाना है, उसकी कटिंग करके इस स्थान या टहनी का चयन करना चाहिये जिस पर उन्नत किस्म की बड़ लगानी हो। उस स्थान पर लगी हुई पत्तियों तथा कांटों को हटाकर साफ कर देना चाहिये साथ ही बडिंग के लिये बडिंग नाईफ (चाकू) काम में लेना चाहिए। उन्नत किस्मों की बड (आंख) प्राप्त करने के लिये पहले उसका चयन कर करीब 4 से 6 लम्बी टहनी के साथ काटकर पानी में रखना चाहिये तथा बडिंग के समय तेज धार वाले चाकु से आंख को निकालकर सावधानीपूर्वक रूट–स्टॉक (देशी पौधे का तना जिस पर आंख को लगाना है) में लम्बी चीरा लगाकर आंख को उसमें लगाने चाहिये। आंख को लगाने के उपरान्त उस जगह को प्लास्टिक की पट्टी से अच्छी तरह से बांध दिया जाता है, ताकि कटे हुए स्थान पर हवा न लगे। बडिंग के 15–20 दिन बाद आंख वाले हिस्से में फूलकर नई टहनी निकलती है। इस पर नये उन्नत किस्म के फूल व फल लगते हैं। बडिंग वाले हिस्से के अलावा अन्य हिस्से की शाखाओं को नहीं बढ़ने देना चाहिये। इस विधि द्वारा बेर, आंवला, नींबू, अमरूद, गुलाब इत्यादि पौधों को उन्नत किस्म के पौधे प्रर्वधित किये जाते हैं।

**5. ग्राफ्टिंग (कलम) विधि द्वारा :**

पौधे की उन्नत किस्म के प्रर्वधन के लिये ग्राफ्टिंग सरल व महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि द्वारा देशी किस्म के पौधे पर उन्नत किस्म के पौधे की टहनी को ग्राफ्ट किया जाता है। यह

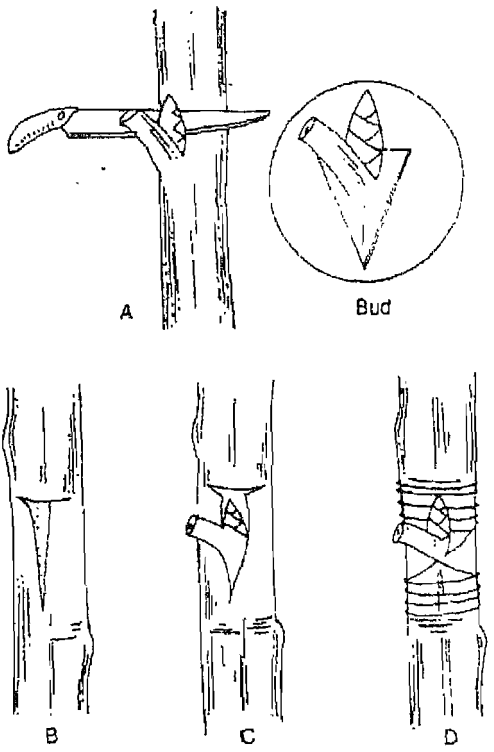


***Fig. 8.16 Grafting of a bud from plant A, in a slit of the stock plant (B, C, D).***

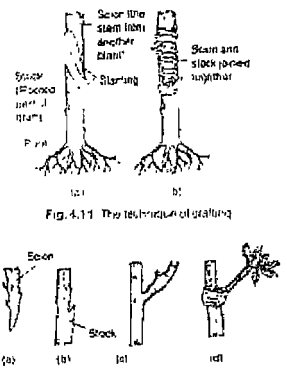


Fig. 4.12: Different stages in bud grafting (a) a prepared scion, (b) root stock, (c) scion being inserted in the stock, (d) grafting showing growth.

## चित्र:बडिंग ( आँख कलिकायन) द्वारा पौधों का प्रवर्धन

विधि सामान्यता छोटी अवस्था के पौधों पर जब मूल पौधा 1–2 फूट लम्बाई प्राप्त कर लेता है, पर ग्राफ्टिंग करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। ग्राफ्टिंग सामान्यतः उनकी बढ़ोतरी की ऋतु में की जाती है। इसके लिये वर्षा ऋतु या बसन्त ऋतु का समय अनुकूल होता है। विभिन्न प्रकार के फल वाले पौधे जिनमें आम, अमरूद आंवला, अनार, निम्बू, किन्नू, संतरा, अंगुर, चीकू, कटहल तथा जामुन शामिल है में इस विधि द्वारा उन्नत किस्म के पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

**फल वृक्षों का रोपण :**

उद्यान में पौधे लगाने का सबसे उपयुक्त समय वर्षा ऋतु है। इस समय लगाये गये पौधे शीघ्र ही जड़े जमा लेते हैं तथा वृद्धि शुरू हो जाती है। जुलाई से अक्टूबर माह तक लगाये गये पौधे जमीन में शीघ्र जम जाते हैं व बढ़वार शुरू हो जाती है। इस समय वातावरण में नमी के साथ–साथ पौधों को पानी भी कम देना पड़ता है। तथा तापक्रम कम रहने से पौधों के झुलसने का डर नहीं होता है।

**पौधों के लिये गड्ढे तथा दीमक व कीटों से सुरक्षा :**

उद्यान में पौधे लगाने से पूर्व इनके लिये गड्डे जून माह में खोद देने चाहिये। इसके लिये 2X2X2 फुट के आकार के गड्डे खोदकर उन्हें धूप में लगने के लिये कुछ दिनों खुला छोड़ देते हैं। पौधों का खतरनाक शत्रु कीट दीमक है क्योंकि यह मिट्टी में रहता है। दीमक से बचाव के लिये गड्ढों में डाली गई खाद पूर्णतया सड़ी हुई होनी चाहिये तथा खाद डालते समय उसमें मिथाइल पैराथियान, कार्बोफ्युरान अथवा क्लोरोपाइरीफोस 5 मि.ली. प्रत्येक गड्ढे में मिला देनी चाहिये।

**उद्यान की रूपरेखा**

उद्यान में पौधे निश्चित दूरी पर जो कि भिन्न–भिन्न फल वृक्षों के लिये भिन्न है पर पौधों का रोपण किया जाना चाहिये।

**सारणी नं.1 फल वृक्षों के बीच सामान्य दूरी**

| फल वृक्ष | दूरी |
|---|---|
| पपीता, अंगूर | 2X4 मीटर |
| फालसा, अनार | 2X3 मी., 3X3 मी. |
| संतरा, नीम्बू, किन्नू, अंजीर | 6X6 मी. |
| अमरूद, खजूर, आंवला | 6X8 मी., 8X8 मी. |
| बेर, बेलपत्र | 6X8 मी., 8X8 मी. |

उद्यान की रूपरेखा इस प्रकार से तैयार की जाती है कि उसमें अधिकतम फल वृ उचित दूरी पर इस प्रकार लगाये जायें कि उनके पोषण उचित हो तथा शस्य क्रियाएं भी आसा से सम्पन्न की जा सके।

पौधे रोपण की निम्नलिखित रूपरेखाएं सामान्यतः प्रचलित है।

**1. वर्गाकार प्रणाली :**

यह सरल तथा सबसे अधिक अपनायी जाने वाली प्रणाली है। इसमें पेड़ एक वर्ग के चार कोनों पर समान दूरी पर लगाये जाते हैं। दूरी जैसे – 6X6 मी., 8X8 मी. तथा 10X10 मी. इत्यादि पर लगाने पर पौधें को प्रदान स्थान का उचित उपयोग होता है।

**2. आयताकार प्रणाली :**

इस प्रणाली में पौधे एक कतार में बराबर दूरी पर परन्तु दूसरी कतार की दूरी पौधे से पौधे की दूरी से भिन्न होती है।

**3. त्रिकोण प्राणाली :**

इस प्रणाली में तीन पौधे बराबर दूरी पर समत्रिकोण बनाते हैं। पौधा सं. 2 4 6 व अन्य एक कतार में तथा 1 3 5 अन्य कतार में होते हैं।

**4. षटकोणीय प्रणाली :**

इस प्रणाली में छः पेड़ मिलकर एक सम षटकोण बनाते हैं तथा सातवां पौधा षटकोण के बीच में लगा दिया जाता है। इस तरह इस प्रणाली में 15 प्रतिशत अतिरिक्त पौधे लगाये जा सकते हैं।

**5. वर्गाकार क्यंक्यक्स प्रणाली :**

यह प्रणाली वर्गाकार प्रणाली की तरह ही है, परन्तु इसमें पांचवा पौधा वर्ग के बीचों–बीच लगाया जाता है जिससे कुल पौधें की संख्या लगभग प्रति एकड़ डेढ़ गुनी हो जाती है।

**6. कंटूर प्रणाली :**

यह प्रणाली पहाड़ों, ढलानों तथा उबड़–खाबड़ जमीन पर अपनायी जाती है। जहां पर मृदा क्षरण अधिक होता है। कंटूर रेखाएं जो समान ऊंचाई वाले स्थानों को जोड़ती है पर पौधे बराबर दूरी पर लगाये जाते हैं। इससे बहते पानी का वेग कम हो जाता है। तथा भूमि में प्रवेश कर जाता है।

जो पौधे निश्चित दूरी पर लगाने है जैसे 10 मीटर तो उनमें प्रथम पौधा मेड़ से पांच मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। फिर 15, 25, 35, 45, 55, 65, 75, 85, और 95 मी. की दूरी पर लगाने से सौ मीटर की कतार में दस पौधे दस–दस मीटरी की दूरी पर लगाये जाते हैं।

***

# उद्यानिकी फसलों की पौधशाला : महत्व एवं तकनीक

इन्द्रमोहन वर्मा

*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

नर्सरी (पौधशाला) व्यवसाय कम लागत व थोड़ी ही जमीन में शुरू किया जा सकता है। इस कार्य को शिक्षित व अशिक्षित सभी व्यक्ति आसानी से कर सकते हैं। इस व्यवसाय को शुरू करते समय यह ध्यान रखें कि जिस स्थान से यह व्यवसाय शुरू करना है वहां की मिट्टी कंकरीली व पथरीली न हो ताकि मिटटी अच्छी उर्वरकता शक्ति पूर्ण हो और पौधों को सफलतापूर्वक उगाया जा सके और आसपास के क्षेत्र से भूमि का स्तर ऊंचा होना चाहिए ताकि जलभराव न हो। नर्सरी के चारों तरफ दीवार या कंकरीली तार की बाड़ लगानी चाहिए। पौधों को मौसम के प्रतिकूल प्रभाव से बचाने के लिए तथा उनके अनुकूल वातावरण देने के लिए ग्रीनहाउस और पॉलीहाउस आदि का निर्माण किया जा सकता है। इसके अंदर पानी देने के लिए ड्रिप सिंचाई विधि की व्यवस्था की जा सकती है। इस विधि द्वारा पानी की बचत होती है। नर्सरी के अंदर धूप पर्याप्त आनी चाहिए। नर्सरी में बड़े छायादार पेड़ नहीं हों वरना इनकी छाया से अन्य पौधें की वृद्धि उचित ढंग से नहीं हो सकेगी। पौधे को पोषक तत्व देने के लिए मिट्टी मे गोबर खाद व पत्तियों की खाद मिलाते रहें। यह ध्यान रखें कि यह खाद काले रंग की हो जाए या पूर्ण रूप से सड़ जाए, उसके बाद ही प्रयोग करें। यदि कच्ची खाद का प्रयोग किया गया तो मिट्टी में बीमारी व कीट पनप सकते हैं जिनके कारण पौधों में क्षति हो सकती है इसलिए कच्ची खाद का प्रयोग नहीं करना चाहिए। नर्सरी के अंदर नए पौधे तैयार करने के लिए प्लास्टिक की थैलियां या गमलों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मिट्टी, खाद व रेत का मिश्रण बनाकर भरें फिर उसमें पौधों की कटिंग लगाएं। पौधों को एक ही जगह पर ज्यादा समय तक न रखें। इनका स्थान बदलते रहना चाहिए वरना गमले या थैली के नीचे से जड़ें निकालकर जमीन में चली जाती है जो कि पौधों को उस स्थान से हटाने में परेशानी खड़ी करती है। यदि पौधों में कोई बीमारी या कीट का प्रकोप दिखाई दे तो तुरंत दवाई का छिड़काव करके नियंत्रित करना चाहिए।

नर्सरी में ऐसे पौध उगाएं जिनकी ज्यादा मांग हो। वैसे सुन्दरता वाले पौधे, फूलों के पौधे मौसमी पौधे, छायादार पौधे, फलदार पौधे लताएं व सब्जियों के पौधे आदि तैयार किए जा सकते हैं। आजकल एक नया ट्रेंड बन रहा है और वह है औषधीय पौधे तैयार करना। आज हर आदमी सोचने लगा है कि मैं अपने गृह उद्यान या फार्म हाउस में ऐसे पौधें को लगाऊं जिससे हरियाली भी रहे और घर की सुन्दरता भी बरकरार रहे और इसका आसानी से उपयोग भी किया जा

सके। इस उद्देश्य से औषधीय पौधों को प्राथमिकता दी जा रही है। औषधीय पौधों को नर्सरी में आसानी से तैयार कर और इनकी बिक्री करके अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा बोनसाई और टोपेयरी पौधों को तैयार करके अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। नर्सरी का स्थान ऐसी जगह चुनें जहां पर वाहन आसनी से आ जा सकें और बिक्री की पर्याप्त संभावनाएं हों। वैसे तो गृहस्वामी व अन्य व्यवसायी नर्सरी से ही पौधे खरीद ले जाते हैं। लेकिन इसके अलावा सरकारी विभाग एवं सार्वजनिक संगठनों में पौधों की आपूर्ति की जाती है।

**पौधों का प्रसारण**

फूल तथा फलों के पौधों का प्रसारण बीज या वानस्पतिक उपकरणों द्वारा किया जाता है। बीज से प्रसारित करने से पौधों में अपने पैतृक वृक्षों की अपेक्षा अधिक अभिन्नता आ जाती है परन्तु जो वृक्ष वानस्पतिक प्रसारण द्वारा तैयार किए जाते हैं उनमें अपने पैतृक वृक्षों की सी समानता रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि पौधे वनस्पतिक उपकरणों द्वारा ही तैयार करने चाहिए जिससे उनके पैतृक गुण वंशानुक्रमण में विद्यमान रहें।

**वानस्पतिक प्रसारण से लाभ**

1. वनस्पति प्रसारण द्वारा तैयार किए गए फल वृक्ष बीज से पैदा किए हुए फल वृक्षों की अपेक्षा पहले फल देना शुरू करते हैं। पेड़ एक ही प्रकार के फल उत्पन्न करते हैं जिनकी फलतः की विशेषताओं के बारे में बागवान को पहले से ही पर्याप्त ज्ञान होता है।
2. एक किस्म के पौधों में एक ही साथ फल आते हैं और उनके पकने का समय भी समान होता है जिससे बागवान को रखवाली तथा फलों को तोड़ने में अधिक सुविधा रहती है।
3. कभी–कभी यह देखा गया है कि प्रकृति में ऐसे पौधे पैदा हो जाते हैं कि उनके बहुत से गुण सुन्दरता तथा फल उत्पादन की दृष्टि से अति उत्तम समझे जाते हैं और इन गुणों को वंशानुक्रम में उपस्थित रखने के लिए वानस्पतिक प्रसारण की विधि ही काम में लाई जाती है।
4. जिन फलों में बीज नहीं बनता उनका प्रसारण इसी ढंग से किया जाता है जैसे केला, अंगूर, नारंगी की कुछ किस्में तथा अन्नानास आदि। जिन फल वृक्षों के बीजों के साथ न उगने तथा धीरे–धीरे उगने की समस्या है, ऐसे पौधों के प्रसारण के लिए इसी ढंग का प्रयोग आवश्यक है।
5. यह सत्य है कि मूलवृंत्त का प्रभाव ऊपर की शाखाओं की वृद्धि पर तथा इन शाखाओं का प्रभाव मूलवृत्ति की वृद्धि पर निश्चित रूप से पड़ता है अतः हम इस प्रभाव का प्रयोग बहुत से पौधों की बीमारियों को अलग करने में करते हैं जैसे कि कुछ मूलवृंत्त बहुत सहिष्णु होते हैं और कई प्रकार के रोगों से वंचित रहते हैं। अगर इन मूलवृंत्तों को पर इसी जाति की अन्य अच्छी जातियाँ लगाई जाएं तो निःसन्देह ये भी मूलवृंत्त की भांति अधिक सहिष्णु बन

जाएंगे और विभिन्न प्रकार के रोगों से पीड़ित नहीं हो सकेगी।

6. नाटे तथा कम फैलने वाले फल वृक्ष अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं क्योंकि इनसे स्थान की बचत होती है जिनमें कई प्रकार के फल वृक्ष उगाए जा सकते हैं। छोटे तथा कम फैलने वाले वृक्ष प्रसारण की इसी विधि द्वारा पैदा किए जाते हैं।
7. नींबू जाति के फल तथा अन्य फलों में कांटे अधिक पाए जाते हैं, जिससे फलों की हानि तथा अन्य क्रियाओं के करने में विशेष असुविधा पहुंचती है। ये दोष इसी ढंग के प्रसारण की क्रिया द्वारा कुछ सीमा तक कम किए जा सकते हैं।
8. इनके द्वारा हम एक मूलवृत्त पर विभिन्न प्रकार के फल उत्पन्न कर सकते है जैसा कि नींबू जाति के पौधों में अक्सर किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वानस्पतिक प्रसारण आधुनिक उद्यान शास्त्र में एक प्रमुख स्थान रखता है परन्तु इतना होते हुए भी बीज प्रसारण की क्रिया को भी निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर भुलाया नहीं जा सकता।

1. वे पौधे जो बीज से उत्पन्न किए जाते हैं, आकार में लम्बे और बड़े होते हैं। उन पौधों के मुकाबले में जो अन्य विधियों से तैयार किए जाते हैं, साधारणतया ऐसे वृक्षों से फल उत्पादन भी अधिक होता है।
2. ये अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं। यद्यपि इनको फल उत्पादन करने की स्थिति तक पहुंचने में अधिक समय लगता है। ऐसे वृक्ष जब एक बार फल देना आरंभ कर देते हैं तो अधिक समय तक बिना किसी देखभाल के फल देते रहते हैं।
3. इस प्रकार के पौधे अधिक शक्तिशाली होते हैं।
4. इस तरीके से भिन्न–भिन्न प्रकार की किस्में तैयार की जा सकती हैं नई किस्में इस विधि द्वारा उत्पन्न की जाती हैं और तब वानस्पतिक प्रसारण द्वारा बढ़ाई जाती है।

जिन पौधों का बीज खराब नहीं होता उनको दूसरे मौसम में बोने के लिए तैयार करना चाहिए। उन पौधों का चुनाव पहले ही कर लेना चाहिए जिनसे बीज प्राप्त करना है। ऐसे स्वस्थ पौधों को अंकित कर देना उचित रहता है। पौधो का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए (1) फलों की आकृति तथा आकार, (2) फलों का रंग व सुगन्ध (3) पत्तियों का स्वास्थ्य (4) फलों का शीघ्र तथा देर से पकना (5) पौधे रोगरहित तथा देखने में सुन्दर प्रतीत हों।

फल वृक्षों के बीज अधिकतर रखने से खराब हो जाते हैं। अतः ऐसे बीजों को तुरन्त ही बोना अच्छा रहता है ये बीज गमलों, नांद, लकड़ी के बक्सों तथा समतल तथा ऊँची भूमि में बोए जा सकते हैं। बोने से कुछ समय पूर्व यह बात याद आती है कि बीज किस स्थान पर और किस तरह बोया जाए, यह सब बातें उनकी किस्म, मौसम तथा भूमि की दशा पर आधारित

है। बीज बोने के लिए निम्नलिखित मिश्रण काम में लाना चाहिए :–

एक भाग मिट्टी, आधा भाग गोबर की खाद, आधा भाग पत्तों की खाद, 1/8 बालू और कुछ कोयले का चूरा मिलाकर बीजों को बोने के काम में लाना चाहिए।

बीज लगभग जितना बडा होता है उतना ही गहरा बोया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बड़े बीज गहरे तथा पतले बीज कम गहरे बोए जाते हैं। कड़े छिलके वाले बीज जो उगने में अधिक समय लेते हैं ऐसे बीजों को बोने से पहले हल्के अम्ल में या पानी में भिगोकर बोना चाहिए। ऐसा करने से उनका छिलका मुलायम हो जाता है और अंकुरण सफलतापूर्वक हो जाता है। जमते समय बीजों को तथा छोटे–छोटे पौधों को गर्मी, प्रकाश तथा हवा की आवश्यकता रहती है इसलिए आवश्यकतानुसार धूप दिखा देनी चाहिए ताकि पौधे स्वस्थ तथा मजबूत तैयार हो सके। जब पौधे कुछ बड़े हो जाएँ, पौध घर से उठाकर स्थायी स्थान पर लगा देना चाहिए।

सब्जी उत्पादन में पौधशाला की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि यह कहा जाए कि सब्जियों की पैदावार पौधशाला में उगायी गयी पौध पर ही निर्भर करती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि अगस्त से सितम्बर तक और जनवरी से फरवरी तक पुरानी फसल फलत में रहती है और खेत खाली नहीं होता। समय का सही सदुपयोग करने के लिए अगले ऋतु में लगायी जाने वाल सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए एक माह पूर्व ही बीज पौधशाला में डाल देते है। कभी–कभी लगातार वर्षा से भी खेत कृषि कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होता और खेती पिछड़ने का भय रहता है ऐसी दशा में भी हमें प्रयोगशाला का ही सहारा लेना पडता है। नदियों के किनारे दीयर क्षेत्र में जुलाई से अक्टूबर तक पानी भरा रहता है और पानी हटते ही किसानों का लक्ष्य पौध रोपण कर जल्द फलत लेना होता है उपरोक्त परिस्थितियों में भी पौधशाला की अहम् भूमिका होती है।

अनेकों सब्जियां जैसे टमाटर, बैंगन मिर्च, शिमला मिर्च, फूलगोभी, पत्तागोभी, चायनीज पत्तागोभी, प्याज, सलाद पत्ता, सेलेरी, ब्रूसेल्स स्प्राउट्स, ब्रोकोली, केला इत्यदि के बीज इतने छोटे होते हैं कि उनका खेत से सीधे लगाना संभव नहीं है क्योंकि उतने बड़े क्षेत्र में बीज की बुआई करके उनकी देखभाल करना ही संभव नही है ऐसी परिस्थिति में इन सब्जियों को प्रथम पौधशाला में बुआई करके पौध तैयार करना तथा पौध तैयार हो जाने पर उनकी मुख्य खेत में रोपण करने से ही अच्छे उत्पादन सम्भव है।

पौधे उगाते समय एक समस्या बराबर सभी कृषक भाईयों के सामने आती है वह है रोग व बीमारियों से पौधों का नष्ट होना या सूख जाना, जड़ के पास से गल जाना इत्यादि। ऐसी हालत में यदि बीज की बुआई पूरे क्षेत्र में करते हैं, तो पूरे खेत में प्रत्येक पौधे को तो देखना

उन पर कीड़ों व रोग से बचाव के लिए दवा का छिड़काव करना काफी मुश्किल एवं व्यावारिक नही है। अतः पौधशाला ही एक अच्छा विकल्प दिखाई पड़ता है, जिससे स्वस्थ पौध तैयार करके समय एवं खर्च की कमी की जा सकती हैं अतः पौधशाला में पौध उगाना आर्थिक दृष्टि से काफी उत्तम है।

जायद ऋतु के आगमन पर किसान भाईयों में अपनी सब्जी को पहले–पहल बाजर में पहुंचाने और अधिक मुनाफा प्राप्त करने की काफी होड लगी रहती है, परन्तु मौसम में ज्यादा ठण्ड होने के कारण बीज का समुचित जमाव नहीं हो पाता और किसान अपने आपको लाचार महसूस करते हैं। यदि कुछ का हो भी जाता है तो वे ठण्ड से सुषुप्ता अवस्था में पड़े रहते हैं और उनमें बढ़वार नहीं होती। यदि जायद में उगायी जाने वाली सब्जियों के हम पौधशाला में उगा लें तो शायद हम सब्जियों की अगेती खेती कर अच्छा मुनाफा प्राप्त कर सकते हैं। यहां यह कहना न्यायोचित होगा कि कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे–लौकी, करैला, खीरा, नेनुआ, तोरई, खरबूज एवं तरबूज इत्यादि के बीजों की बुआई सीधे खेत में की जाती है। उन्हें उखाड़ कर नहीं लगाया जा सकता, परन्तु यदि उनके बीज हम पालीथीन की छोटी–छोटी थैलियों में (15 गुणे 10 सेमी) में उर्वरक मिश्रण भर कर बुआई करें और पौध 30–40 दिनों की हो जाने पर उनके जड़ों को बिना प्रभावित किए उसी प्रकार मिट्टी सहित खेत में रोपण कर देवें तो सीधे खेत में बोया जाने वाली सब्जियों के भी पौध तैयार करके अगेती खेती और अच्छी पैदावार ली जा सकती है। इस प्रकार पौधशाला में पौध उगाने से, खेत की तैयारी व अगेती फलत लेने में काफी सुविधा मिल जाती है।

**निजी क्षेत्रों में पौधशाला स्थापना**

बेरोजगारी के इस युग में यदि कोई किसान स्वयं रोजगार से अपनी आजीविका चला रहा है तो बहुत बड़ी बात है। समय बहुत तेजी से बदल रहा है और इस बदलते परिवेश में युवाओं को भी चाहिए कि वे स्वयं को बदलें और अपने जीने का कोई नया ढंग तलाश करें। इसके लिए व्यापारिक स्तर पर सब्जियों की पौधशाला स्थापन बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं। इससे युवाओं में नए रोजगार का सृजन हो सकता है और बहुत ही कम समय (मात्र एक डेढ़ माह में) वे अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। निजी क्षेत्र में पौधशाला स्थापना के लिए कई बातों का ध्यान रखना होगा जैसे पौधशाला की स्थापन कब और कहां किया जाए, शहर से दूरी कितनी हो, किस तरह की सब्जियां उगायी जाएं, स्थानीय कृषकों की मांग किस सब्जी की है और किन–किन कृषि यंत्रों की आवश्यकता पड़ेगी। उपरोक्त का क्रमवार विवरण इस प्रकार है,

ठण्ड के दिनों में व वर्षा ऋतु के समय खेत में बीजों की बुआई करने की सलाह नहीं दी जाती परन्तु यदि हम पौधशाला में बीजों की बुआई करें तो उससे कोई नुकसान नहीं होता

कहने का तात्पर्य यह है कि अधिक ठण्ड के समय पौध उगाने के लिए पौधशाला को इस प्रकार बनावें कि वह सामान्य वातावरण से गर्म हो जैसे पाली हाउस और वर्षा ऋतु के समय जहां खुले खेत में पौध उगाना असंभव है वहां पौधशाला में बीज की बुआई कर सकते है और आवश्यकतानुसार पॉलीथीन की चादर से ढक करके वर्षा ऋतु के जल से मिट्टी बैठने से बचाया जा सकता है ताकि बीज का जमाव अचछी प्रकार हो सके। कभी–कभी तेज धूप से भी पौध तेजी से नष्ट होने लगती है ऐसे में छाया प्रदान करने वाली जाली (शेडिंग नेट) पौधशाला के ऊपर लगाकर पौधों को छाया प्रदान कर बचाया जा सकता है।

टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च इत्यादि के पौधे प्रायः बीज बुआई के प्रथम 30 दिनों के अन्दर ही विषाणु रोगों से संक्रमित हो रोगी हो जाते हैं और उनसे आशातीत पैदावार नहीं मिल पाती। इनके बीजों को पौधशाला में बुआई करके क्यारियों को "एग्रोनेट" (सफेद जाली) से ढंक कर रोग रहित पौध तैयार किया जा सकता है जबकि पूरे खेत में बीजाई कर विषाणु रोग से नियंत्रण करना असंभव है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं पौधशाला का सब्जी उत्पादन में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका है और प्रत्येक किसान भाईयों को चाहिए कि इस कार्य का सम्पादन अच्छी प्रकार से करें ताकि प्रत्येक पौध उत्तम एवं स्वस्थ पैदा हो।

**आधुनिक पौधशाला के लिए आवश्यक सामग्री एवं यंत्र**

छोटे पैमाने पर पौधे उगाने के लिए किसान भाई अपने पास उपलब्ध साधनों से ही कार्य सम्पन्न कर लेते हैं। परन्तु यदि उन्हें पौध उगाकर उसका ही व्यवसाय करना है और वैज्ञानिक ढंग से नये तौर तरीकों को अपनाकर स्वस्थ एवं निरोगी पौध उगाकर कम खर्च से अच्छा लाभ प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सामग्री एवं कृषि यंत्रों की आवश्यकता पड़ सकती है।

**(क) आवश्यक सामग्री**

पौधशाला के लिए भूमि

व्यावसायिक पौधशाला के लिए भूमि मुख्य सड़क पर या उससे लगी होनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रेखांकित की गयी भूमि (चुनी गयी) सामान्य से थोड़ी ऊँची हो और वर्षा ऋतु का पानी न रूकता हो। चयनित भूमि की मिट्टी बलुई दोमट प्रकृति की हो अधिक हल्की व भारी मिट्टी पौधशाला के लिए अनुपयुक्त होती है। जमीन का पी.एच. मान 6.5–7.5 के बीच हो।

सिंचाई के लिए पानी का उपयुक्त साधन

पौधशाला के पौधे अधिक नाजुक होते हैं जिन्हें प्रतिदिन हलकी सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हैं, अतः पम्प, ट्यूबवेल, तालाब, नदी, कुआं इत्यादि में से कोई भी साधन जल आपूर्ति करने

के लिए अवश्य उपलब्ध हो ताकि जब भी आवश्यकता पडे सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो।

अन्य आवश्यक सामग्री की उपलब्धता :

अन्य आवश्यक सामग्री जैसे सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद, बीज ढंकने के लिए खरपतवार, एग्रोनेट जाली, छायादार जाली पालीथीन चादर, पाली हाउस, लोहे की (2 मिमी मोटी) अर्धचन्द्राकार आकार पॉलीथीन की पारदर्शी चादर इत्यादि की उपलब्धता हो।

छायादार स्थान :

पौधशाला के चयनित स्थान से सटे एक या दो कमरे अवश्य हो ताकि आवश्यक सामग्री व कृषि यंत्र उसमें रखकर सुरिक्षत रखा जा सके। पौधे तैयार होने पर उन्हें खुले हवादार स्थान में रखने के लिए कमरे से सटा हुआ छायादार बरामदा भी अत्यन्त आवश्यक है ताकि वहां पौध लाकर बण्डल बनाने व पैकिंग का कार्य किया जा सके।

मुख्य सड़क पर पौधशाला का बोर्ड :

उन्नतशील पौध जो पौधशाला में तैयार हो उनका समय से विक्रय के लिए प्रचार–प्रसार भी आवश्यक है। अतः मुख्य सडक पर पौधशाला का नाम व तैयार किए गए पौध के लिए एक बोर्ड अवश्य होना चाहिए ताकि लोगों को जानकारी हो कि यहां पर अमुक प्रकार के सब्जियों की पौध उपलब्ध है।

**(ख) पौधशाला के लिए आवश्यक कृषि यंत्र**

पौधशाला के लिए आवश्यक कृषि यंत्र तो प्रायः सभी कृषक भाईयों के पास उपलब्ध रहते हैं परन्तु व्यावसायिक दृष्टिकोण से एक उन्नतशील व आधुनिक पौधशाला के लिए निम्न कृषि यंत्र अवश्य होने चाहिए। वर्तमान परिवेश में जहां शहरीकरण के चलते कृषि मजदूरों का अभाव हो रहा है और यदि मजदूर मिलते हैं तो भी अधिक मजदूरी मांगते हैं और मजबूरी में कृषकों को उन्हीं से कार्य लेना पड़ता है। सब्जी उत्पादन एवं सब्जी पौधशाला उत्पादन एक कच्चा व्यवसाय है और उचित देखभाल समय से न करने पर अच्छी पैदावार नहीं मिल पाती आधुनिक पौधशाला में सिंचाई के लिए स्प्रिंकलर सेट लगे रहते है ताकि बटन दबाने के साथ ही सर्वत्र एक समान पानी का छिड़काव हो जाए। यदि रोग और कीड़ों से पौधशाला को रोकथाम करनी है तो एक टैंक में आवश्यक कीटनाशी व रोगनाशी दवाओं का घोल बनाकर स्प्रिंकलर के सहारे ही छिड़काव कर सकते है। इस प्रकार न सिर्फ समय की बचत होगी और कीट व बीमारियों से पौध को बचाया जा सकता है। नियंत्रित पौधशाला होने से पौध गुण्वत्तायुक्त, ओजस्वी और रोपण के पश्चात शीघ्र विकसित होने वाले तैयार होंगे।

**सब्जियों की पौध तैयार करना दुष्कर एवं जोखिम युक्त**

सब्जियों की पौध तैयार करना सभी किसान भाईयों के लिए सामान्य बात नहीं है। य

अत्यन्त ही जोखिम भरा कार्य है क्योंकि यह देखा जाता है कि किसान भाई बाजार से महंगे बीज खरीद कर लाते है और अपनी सूझ–बूझ व तकनीकों से पौधशाला में पौध उगाते है। परिणाम यह होता है कि जमाव के एक सप्ताह के अन्दर ही आधे पौधे जमीन की सतह से गलकर नष्ट हो जाते है और पौध रोपण योग्य तैयार होते–होते बहुत ही कम पौधे बच पाते है। विपरित परिस्थितियों में तो पौध उगाना सबके बस की बात नहीं है। उदाहरण के तौर पर वर्षा ऋतु में यदि बराबर वर्षा हो रही हो या शरद ऋतु में तापक्रम बहुत कम रहता है और बीज का जमाव नहीं हो पाता तो ऐसी परिस्थिति में यदि किसान भाईयों में से सुविधा सम्पन्न लोग स्वेच्छा से आगे आवें और न सिर्फ अपने लिए बल्कि अपने आस–पास के सभी किसान भाईयों व गांव के लिए सब्जियों की पौध उगावें तथा थोड़ा फायदा लेकर सब्जी उत्पादकों को बेचें तो सब्जी उत्पादक अच्छी उपज और आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

**पौधशाला में सब्जियों की पौध तैयार करने से निम्नलिखित लाभ है।**

1. पौध विक्रय से अच्छी आमदनी।
2. एक ही किस्म का पूरे क्षेत्र में उत्पादान होने से विपणन मे सुविधा तथा एक रंग, रूप व आकार में समानता होने से अच्छी कीमत।
3. एक ही समय सभी किसान तुड़ाई कर तथा पैकिंग करके दूर दराज के क्षेत्रों में भेज कर उत्तम लाभ प्राप्त कर सकते है।
4. किसी रोग या कीट का प्रभाव फसलो पर होने से समूहिक प्रयास द्वारा समस्या का निदान वैज्ञानिक ढंग से करना संभव है।
5. पौध तैयार कर विक्रय करना स्वयं में एक धन अर्जन का साधन है।
6. परिरक्षण की इकाई स्थापित कर उत्पादित सब्जियों से विभिन्न प्रकार के संरक्षित पदार्थ जैसे–अचार, चटनी, जूस इत्यदि बना सकते हैं।
7. रोजगार के अवसर सुलभ हो सकते हैं।

***

# उद्यानिकी फसलों का तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन एवम् भण्डारण

अतुलचन्द्रा

*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

उद्यानिकी फसलों के अन्तर्गत फल, सब्जियां, पुष्प, बीजीय मसालें एवम् औषधीय फसलें आती है। भारत वर्ष में प्रतिवर्ष उचित तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन एवम् भण्डारण के अभाव में 25–30 प्रतिशत उत्पादन सड़कर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के नुकसान को प्रभावी फसलों के तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन एवम् भण्डारण द्वारा कम किया जा सकता है। राजस्थान में प्रमुख रूप से निम्नलिखित उद्यानिकी फसलें उगाई जाती है।

**1. फल :** बेर, खजूर, अनार, बेल, नींबू वर्गीय जैसे किन्नो, संतरा, नींबू, मौसबी, आंवला, पपीता, लसोड़ा, केर, खेजड़ी, आम, अमरूद, करौंदा इत्यादि।

**2. सब्जियां :** कद्दू वर्गीय जैसे लोकी, तरोई, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, काशीफल, टिंडा, आलू, टमाटर, बैंगन, मिर्च, शिमला मिर्च, फूलगोभी, पत्ता गोभी, गांठ गोभी, प्याज, लहसुन, मूली, गाजर, शलगम, भिंडी, मटर, सेम, ग्वार, लोबिया, मेथी, पालक, चौलाई, धनिया, इत्यादि।

**3. पुष्प :** गुलाब, गेंदा, गुलदाऊदी, डहेलिया, ग्लेडियोलस इत्यादि।

**4. बीजीय मसालें :** मेथी, धनिया, जीरा, अजवाइन, सौंफ

**उद्यानिकी फसलों के खराब होने के कारण :**

फलों एवम् सब्जियों को तुड़ाई उपरान्त अधिक समय तक इनको उपयोग हेतु सुरक्षित नही रखा जा सकता है क्योंकि इनमें श्वसन, वाष्पन, कार्बनडाई आक्साइड का निकलना इत्यादि क्रियाएं होती रहती हैं। इसके अतिरिक्त बीमारियों के प्रकोप से भी फल नष्ट होने लगते हैं। फल, सब्जियों में खराबी, एन्जाइम, सूक्ष्मजीव, फफूंदी एवं जीवाणुओं द्वारा होती है। इनके पकने के लिए एन्जाइम जिम्मेदार होते हैं जो कच्चे फलों में मौजूद प्रोटोपेक्टिन को पेक्टिन में बदल देते हैं तथा अधिक पकने पर यह पेक्टिक अम्ल में बदल जाता है। फलस्वरूप फल एवं सब्जियां सड कर नष्ट हो जाते हैं। सूक्ष्म जीव भी फल एवं सब्जियों को नष्ट करने में सहायक होते हैं इनमें खमीर, फफूंदी एवं जीवाणु मुख्य हैं। खमीर के उगने के लिए शक्कर अथवा स्टार्च की आवश्यकता पड़ती है तथा 10–20 प्रतिशत मात्रा शर्करा की होने पर यह खूब आसानी से उगता है। इसकी क्रिया से खाद्य पदार्थो के कार्बोहाइड्रेट एल्कोहल तथा कार्बनडाई आक्साइड में बदल जो हैं तथा परिणाम स्वरूप यह सड़न पैदा कर देते हैं। फफूंदी अधिक नमी की परिस्थिति

में फलों एवम् सब्जियों में विकसित हो जाती है तथा रूई जैसी बढ़वार दिखायी देने लगती है। अंधरे स्थानों में इसकी बहुत अधिक बढ़वार होती है। जीवाणु खमीर तथा फफूंदियों की तुलना में अधिक छोटे होते हैं तथा बहुत तेजी से बढ़ते है।

ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक हवा, पानी, धूल, मक्खियों तथा अन्य साधनों से पहुंचते हैं। कुछ जीवाणु वायु की उपस्थिति में उगते हैं। इन्हें वायुजीवी (एरोबिक) जीवाणु कहते हैं। अन्य जीवाणु जो कि वायु की अनुपस्थिति में भी तेजी से बढ सकते हैं उन्हें अवायु जीवी अथवा अनएरोबिक जीवाणु कहते हैं।

उद्यानिकी फसलों की तुड़ाई के उपरान्त सर्वप्रथम उनका पूर्वशीतलन (प्रीकूलिंग) बहुत आवश्यक है। इनकी तुड़ाई के पश्चात क्षेत्रीय ऊष्मा रहती है, उसे दूर करना बहुत आवश्यक है अन्यथा श्वसन, वाष्पोत्सर्जन एवम् अन्य क्रियात्मक गतिविधियां पहले की तरह चलती रहती है और इनकी आयु कम हो जाती है। श्वसन क्रिया जल, कार्बनडाई आक्साइड और ऊष्मा पैदा करता है जिसे दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्व शीतलन द्वारा श्वसन दर में कमी, उपापचय में कमी, रोग कारकों की वृद्धि में कमी आती है तथा साथ ही साथ गन्दगी, धूल आदि के कण भी दूर होते है।

**पूर्व शीतलन निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है –**

1. फलों एवम् सब्जियों को सर्वप्रथम तुड़ाई प्रातःकाल (5 से 9 बजे) अथवा सायंकाल में करें जब वातावरण ठण्डा होवें। तुड़ाई की उचित विधि भी बहुत अधिक आवश्यक हैं। फल को घुमाकर या नीचे से ऊपर तोड़े। फल को अधिक रगड़ घुमाव व उठा–पटक से बचावें। ध्यान रहे कि जमीन पर कोई फल टूटकर न गिरे। ऐसा हो जाने से उसके शरीर की सारी कोशिकाएं नष्ट हो जाती है। जिससे फल बदरंग हो जाते हैं। फलों की तुड़ाई ग्रेड के अनुसार ही की जानी चाहिए। छोटा–बड़ा फल न तोड़ें। गंदा काना, गला–सड़ा फल अलग रखकर नष्ट कर देवें। मिर्च एवं बैगन के फल नक्कू सहित ही तोड़े तथा इस बात का ध्यान रखें कि केवल नक्कू के ऊपर से पकड़कर तोड़े, नीचे से नहीं तोड़े, टूटे हुए फल केवल झोली या टोकरी में ही ड़ालने चाहिए जिस पर कपड़ा या प्लास्टिक सिला हुआ होना चाहिए। यदि फलों एवम् सब्जियों को बोरी में रखना हो तो बोरी को ऊपर से धागे अथवा सुतली से बांधना चाहिए। झोली या टोकरी को नीचे बैठकर ही खाली करें, ऊपर से खड़े–खड़े फलों एवम् सब्जियों को न डाले क्योंकि इससे फल नष्ट हो जाते हैं। जहां पर उत्पाद को इकट्ठा करना है वहां पर जमीन पर भूसा तथा उसके ऊपर हरा चारा बिछा देना चाहिए जिसकी मोटाई कम से कम 15 सेंटीमीटर होवे। सब्जियों का ढेर चौड़ा न फैलाकर उसे सीधी पंक्ति में 10 फुट लम्बा बिछावे। फल एवम् सब्जियों पर किसी भी समय सीधी धूप न लगे।

2. फलों एवम् सब्जियों को 5–13 डिग्री सेन्टीग्रेट पानी में डुबा कर गर्मी कम की जाती है। सामान्यत फलो एवम् सब्जियों को 6–30 मिनट तक डुबाया जाता है।

3. पूर्व शीतलन बर्फ का प्रयोग द्वारा निर्वाह द्वारा भी किया जा सकता है।

**श्रेणीकरण :**

फलों एवम् सब्जियों की पूर्वशीतलन (प्रीकूंलिग) करने के पश्चात् श्रेणीकरण (ग्रेडिंग) बहुत अधिक आवश्यक है। श्रेणीकृत उत्पाद आकार, रंग इत्यादि में समान होते हैं तथा उनकी बिक्री द्वारा अधिक मूल्य बाजार में मिलता है। श्रेणीकरण का कार्य छोटे स्तर पर हाथ से तथा व्यवसायिक स्तर पर ग्रेडर (स्क्रीन ग्रेडर/रोलर ग्रेडर) आदि मशीनों द्वारा किया जाता है। स्क्रीन ग्रेडर सबसे अच्छा होता हैं जिसमें अलग–अलग आकार की छेद वाली तांबे की ट्रे लगी होती है। बड़े आकार के फल ऊपर वाली ट्रे में रह जाते हैं, उससे छोटे आकार के फल छेद से नीचे वाली ट्रे में आ जाते हैं तथा सबसे छोटे फल आखरी ट्रे में रखे जाते हैं। फलों को रंग, आकार एवम् परिपक्वता के आधार पर श्रेणीकृत करते हैं। संतरा, किन्नो, नींबू, आलू, प्याज आदि का आकार गोल होता है तथा इन्हें ग्रेडर की सहायता से बड़े मध्यम व छोटे आकार की श्रेणियों में विभाजित करते हैं। मटर के दानों की ग्रेडिंग विभिन्न आपेक्षिक घनत्व वाले नमक के घोल में डुबोकर की जाती हैं।

**पैकिंग :**

फल एवम् सब्जियों को श्रेणीकरण करने के पश्चात उनको बाजार में पैकिंग करके भेजा जाता है। पैंकिग की विभिन्न विधियां निम्न प्रकार से है :

**1. बोरियों मे पैक करना :** यह पैकिंग का सबसे सरल एवम् सस्ता तरीका है। अधिकतर किसान कच्चे आम, बेर अमरूद, मूली, गाजर, करेला, बैंगन, आलू इत्यादि को बोरियों में भरकर उनका मुंह सिल देते हैं। इस विधि से पैकिंग करने पर दबाव एवम् रगड़ लगने के कारण फल एवम् सब्जियां खराब हो जाते हैं। जूट की बोरियां प्लास्टिक से निर्मित बोरियों की अपेक्षाकृत पैकिंग हेतु अच्छी होती है।

**2. टोकरियों में पैक करना :** टोकरियों में नीचे सूखी घास–फूस या पुआल रखकर उसमें फल या सब्जियों को भरकर फिर पुआल या घास–फूस लगाकर बोरी के टुकड़े से ढक कर सिल देते हैं। किनारे पर सुतली से यह बोरों की अपेक्षाकृत अच्छा तरीका है।

**3. लकड़ी की पेटियों में पैक करना :** लकड़ी की पेटियों में परतों में फल एवम् सब्जियों को पैक करते हैं। प्रायः किन्नो, आम, टमाटर इत्यादि में इसे प्रयोग में लाते हैं।

**4. हार्ड बोर्ड के कार्टून में पैक करना :** इसमें गत्तों से बने बक्से प्रयोग में लाते हैं। हवा की आवाजाही हेतु छेद भी बना देते हैं।

**5. प्लास्टिक के क्रेट में पैक करना :**

फल अथवा सब्जियो को झिरीदार प्लास्टिक की क्रेट में पैक करते हैं। सबसे पहले कागज की कतरने ट्रे या क्रेट की सतह पर बिछा देते हैं जिससे फल या सब्जियां क्रेट से रगड न खाये। क्रेट को एक–दूसरे के ऊपर आसानी से रख सकते है। इसमें प्रारम्भिक खर्चा अधिक आता हैं, लेकिन क्रेट का प्रयोग बार–बार कर सकते हैं।

पैकिंग के बाद प्रत्येक नग (टोकरी, बोरी, कार्टून, क्रेट) पर उसमें पैक किये गये फल अथवा सब्जी की किस्म, *श्रेणी आदि का लेबल लगा देना चाहिए। इससे मण्डी या बाजार में* बिक्री में आसानी रहे। भिण्डी, बैंगन, शिमला मिर्च, फ्रेंच बीन्स इत्यादि को 100 गेज के पोलीथीन की थैलियों में 0.5 प्रतिशत वातायन की थैलियों में पैक कर सकते हैं।

**फूलों की पैकिंग करना :**

ऐसे फूल जो लुज होते है, उनकी पैकिंग बांस की टोकरियों में की जाती है। इस हेतु बांस की टोकरी में पहले बोरी की टाट को गीला करके बिछा देते हैं। तत्पश्चात् उनमें फूलो को भर देते हैं। तथा पुनः उनके ऊपर नमी का ह्रास रोकने हेतु ऊपर गीली बोरी की टाट लगा दी जाती है। कट फ्लावर्स की पैकिंग गत्ते या प्लास्टिक क्रेटस में इस तरह करते हैं कि उनको किसी प्रकार की हानि नहीं हो। बड़े आकार के कट फ्लावर्स जैसे ग्लेडियोलस और जरबेरा को प्लास्टिक की बाल्टियों या डिब्बों में पैक करते हैं तथा उनमें पोषक तत्वों का घोल भरते है। इन कट फ्लावर्स का निचला हिस्सा बाल्टी में रखकर ऊपर से पॉलिथीन या बोरी की टाट की मदद से ढक देते हैं। जिससे इनकी नमी बनी रहे।

किन्नों के फलों को वैक्सोल (मोम) के 12 प्रतिशत घोल में डुबाकर रखने पर यह कमरे के सामान्य तापक्रम में लगभग एक माह तक खराब नहीं होते।

उद्यानिकी फसलों से प्राप्त उत्पादन को यदि तुरन्त बाजार में नहीं बेचना है तो उसको परिरक्षित करना होगा। ऐसा या तो उन परिस्थितियों में करते हैं जब बाजार में उनकी अधिक आवक के कारण दाम बहुत घट गये हो अथवा उनके मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाकर किसान अधिक से अधिक लाभ अर्जित करना चाहता है। परिरक्षण हेतु दो प्रकार की विधिया काम में लायी जाती है :

**1. अल्प अवधि के लिए सुरक्षित रखने की विधियां :**

**अ) कम तापमान पर :** फल एवं सब्जियां अधिक तापक्रम (गर्मी) होने पर नष्ट होने लगती है। यदि उनको कम तापक्रम पर रख दिया जाए तो उन्हें सुरक्षित रखा जा सकता है क्योंक कम तापक्रम होने पर जीवाणु निष्क्रिय हो जाते हैं।

**ब)शून्य ऊर्जा प्रशीतन कक्ष :** भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली ने

उत्पादन स्थल पर ही फल एव सब्जियो को अल्प अवधि के लिए सुरक्षित रखने हेतु इसका विकास किया है, जो वाष्पन शीतलन प्रणाली पर आधारित है और इस मे कोई ऊर्जा भी खर्च नही होती। इसे गाव मे ही बागो या खेतो मे बनाया जा सकता है क्योकि इसके निर्माण मे किसी कारीगर की आवश्यकता नही होती। इसमे लगने वाला कच्चा माल आवश्यकता पडने पर दुबारा इस्तेमाल किया जा सकता हे। इस भण्डारण कक्ष का फर्श ईंट की इकहरी पर्त का बनाया जाता है। जबकि चारो ओर की दीवारे दो परतो के बीच लगभग 7 5 सेन्टीमीटर की दूरी रखी जाती है। बीच के खाली स्थान को साफ बालू से भर दिया जाता है। यह कक्ष बनाने मे लगभग 400 ईंटे लगती है। इस कक्ष को बास के ढाचे पर खसखस या बोरे लपेट कर बनाए गए ढक्कन से ढका जाता है। प्रशीतन कक्ष का निर्माण किसी छायादार स्थान पर करना चाहिए जहा खूब हवा आती हो। यह स्थान पानी के स्त्रोत के निकट होना चाहिए। निर्माण के बाद कक्ष की दीवारो और फर्श के बीच मे भरी बालू तथा ढक्कन पर तब तक पानी छिडकते रहना चाहिए जब तक ये पूरी तरह से तर हो जाये उसके बाद इन पर प्रतिदिन सुबह शाम एक बार पानी छिडकना पर्याप्त है। इससे कक्ष मे वाछित नमी व तापमान बने रहते हैं। पानी छिडकते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि दीवारो के बीच मे भरी बालू पानी के छिडकाव से बाहर न बह जाए तथा भडारित फल व सब्जिया पानी के सीधे सपर्क मे न आए। फलो और सब्जियो को कक्ष के आकार के अनुसार उपयुक्त आकार के क्रेटो या टोकरियो मे रखना चाहिए। इन्हे कक्ष मे न तो ठुस–ठुस कर रखना चाहिए और न ही कक्ष की गीली दीवारो से सटाकर रखना चाहिए। प्रशीतन कक्ष के भीतर उच्चतम तापमान वर्ष भर बाहर के तापमान की तुलना मे काफी कम रहत है। उदाहरण के तौर पर गर्मियो के मोसम मे जब बाहर का तापक्रम 44° सेन्टीग्रेड होता हे त भीतर तापमान केवल 28° सेन्टीग्रेड रहता है। साथ ही साथ प्रशीतन कक्ष मे आपेक्षिक आर्द्रत वर्ष भर 90 प्रतिशत से अधिक बनी रहती है जबकि बाहर वातावरण मे आपेक्षित आर्द्रता बहु कम अर्थात 13 प्रतिशत होती है। फल एव सब्जियो को तुडाई व कटाई के पश्चात इस जीर एनर्जी कूल चैम्बर के कक्ष मे रखकर लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

**2. शीत गोदाम (कोल्ड स्टोर) में भण्डारण :**

शीत गोदाम मे तापमान सामान्यत 5 से 10 डिग्री सेन्टीग्रेड तथा सापेक्ष आर्द्रता 85 9 90 प्रतिशत तक रखी जाती है। उपयुक्त तापमान और सापेक्ष आर्द्रता, फल या सब्जी के प्रका पर निर्भर करती है। व्यावसायिक तौर पर आलू, टमाटर, बैगन, भिण्डी, हरी मटर, सेम, अना अमरूद, आम, नीबू एव पपीता को कोल्ड स्टोर मे सुरक्षित रखा जा सकता है। जिसका विवर निम्नलिखित तालिका –1 मे दिया जा रहा है–

तालिका – 1

ताजा फल/सब्जियों के व्यावसायिक भण्डारण में अनुमोदित तापमान, आपेक्षित आर्द्रता तथा भण्डारण अवधि का विवरण

| फल/सब्जी | तापमान (डिग्री सें.) | आपेक्षित आर्द्रता (%) | भण्डारण अवधि |
|---|---|---|---|
| आम | 12.8 | 86–90 | 2–3 सप्ताह |
| अनार | 0.0 | 90 | 2–4 सप्ताह |
| अमरूद | 7.2–10.0 | 90 | 2–3 सप्ताह |
| नींबू | 8.9–10.0 | 85–90 | 6–8 सप्ताह |
| पपीता | 7.2 | 85–90 | 1–3 सप्ताह |
| आलू | 4.4–10.0 | 90 | 2–3 सप्ताह |
| काशीफल | 10.0–12.8 | 70–75 | 2–3 सप्ताह |
| गाजर | 0.0 | 90–95 | 4–6 सप्ताह |
| टमाटर (पका) | 12.8–21.1 | 85–90 | 1–3 सप्ताह |
| पालक | 0.0 | 90–95 | 10–14 दिन |
| प्याज | 0.0 | 90–95 | 2–8 माह |
| बैंगन | 7.2–10 | 95 | 1 सप्ताह |
| भिण्डी | 7.2–10 | 90–95 | 7–10 दिन |
| हरी मटर | 0.0 | 90–95 | 1–4 सप्ताह |
| सेम | 4.4–7.2 | 90–95 | 7–10 दिन |

**ब. आर्द्रता अपवर्जन परिरक्षण :**

नमी में जीवाणु तेजी से बढ़ते हैं तथा इसकी अधिकता से फलों एवं सब्जियों में रासायनिक परिवर्तन तेजी से होने लगते हैं। साथ ही साथ जीवाणुओं के पनपने के लिए अनुकूल परिस्थितियों हो जाती हैं। अतः फल और सब्जियों को शुष्क वातावरण में रखने से उनको अल्प अवधि के लिए परिरक्षित किया जा सकता है।

**स. हल्के कीटाणु नाशक पदार्थों का प्रयोग :**

चीनी, नमक, सिरका, तेल, मसालें, सोडियम बेंजोएट, पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट आदि का प्रयोग कर के अल्प काल के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है क्योंकि कीटाणुओं पर इनका अस्थाई असर होता है।

**द. आर्द्रता संरक्षण या मोम लेपन :**

इसके द्वारा फल एवं सबिजयों के भीतर नमी अल्प अवधि के लिए ज्यों की त्यों रखी जा सकती है। मोम के साथ–साथ फफूंदी नाशक का भी प्रयोग दिया जा सकता है। मोम लेपन

मुख्यतः नींबू वर्गीय फलों, आम, टमाटर आदि मे किया जाता है।

**ब. पास्तुरीकरण :** ताप द्वारा जीवणुओ को नष्ट कर दिया जाता है। इस विधि में खटास रहित उत्पादों का परिरक्षण अस्थाई तौर पर संभव है।

**2. अधिक अवधि तक फल एवं सब्जियों को परिरक्षित करना :**

अधिक दिनों तक फल एव सब्जियों को सुरक्षित रखने हेतु यह आवश्यक है कि इनमें उपस्थित जीवाणु या तो नष्ट हो जाएं, या निष्क्रिय हो जाए। इस प्रकार के परिरक्षण में रासायनिक परिवर्तन भी होते हैं परन्तु यह धीरे–धीरे होते हैं। इसके लिए निम्नलिखित विधियों को प्रयोग में लाया जाता है

**1. निर्जलीकरण (स्टरलाइजेशन) :**

इसमें समस्त जीवाणुओं को अधिक तापक्रम मे नष्ट कर देते हैं। फल एवम् सब्जियो में उपस्थित विटामिन, रंग स्वाद आदि मे कमी आ सकती है। डिब्बा बंद फल–सब्जियों को इसी सिद्धान्त के द्वारा परिरक्षित किया जाता है। फलों के खटास युक्त होने के कारण इन्हें पानी के उबलने के तापमान (100 सेन्टीग्रेट) पर स्टरलाइजेशन किया जाता है जबकि सब्जियों को खटास रहित होने के कारण उससे अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक तौर पर मटर, आम, गाजर, मशरूम आदि की डिब्बा बन्दी की जाती है।

**2. चीनी द्वारा :**

चीनी की खाद्य पदार्थ में मात्रा 66 प्रतिशत अथवा उससे अधिक रखने पर उसे स्थायी रूप से परिरक्षित किया जा सकता है। चीनी के गाढे घोल में जीवाणु परासरण क्रिया के परिणाम स्वरूप निष्क्रिय या नष्ट हो जाते हैं। फलपाक, अवलेह, मार्मलेड, मुरब्बा, कैन्डी, सिरप आदि उत्पाद इसी सिद्धान्त पर सुरक्षित रहते हैं।

**3. नमक द्वारा :**

जीवाणुओं को नमक की 15 प्रतिशत अथवा उससे अधिक मात्रा नष्ट कर देती है। आचार इसी सिद्धान्त पर सुरक्षित रहते हैं। नमक फलों एवम् सब्जियों को निर्जलिकृत कर देता है तथा ऑक्सीजन की घुलनशीलता को भी कम कर देता है। परिणाम स्वरूप सूक्ष्म जीवों की वृद्धि रूक जाती है।

**4. एसिटिक अम्ल द्वारा :**

दो प्रतिशत अथवा अधिक एसिटिक अम्ल द्वारा स्थाई रूप से पदार्थों को परिरक्षित किया जा सकता है।

**5. रासायनिक पदार्थ :**

पोटेशियम मैटाबाइसल्फाइट (के.एम.एस.) पानी में घोलने पर सल्फर डाईऑक्साइड गैस निकलती है तथा इसकी उपस्थिति में जीवाणु नहीं पनप पाते । सोडियम बेन्जोएट पानी में घुलकर बेजोइक एसिड बनाता हैं तथा जीवाणु को नहीं पनपने देता। ये दोनों रासायनिक पदार्थ खटास युक्त खाद्य पदार्थों को ही सुरक्षित रखते हैं।

### 6. किण्वन (खमीर उठाना) :

इसमें जीवाणुओं एवम् विकारों (एन्जाइमों) की क्रिया से खाद्य पदार्थों का कार्बोहाइड्रेट नष्ट हो जाता है। एल्कोहलीय किण्वन में 18 प्रतिशत एल्कोहल होने पर सारे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। एसिटिक किण्वन में एल्कोहल से एसिटिक अम्ल तैयार होता है तथा 2 प्रतिशत से अधिक एसिटिक अम्ल खाद्य पदार्थों को स्थायी रूप से सुरक्षित रखता है। कैचप, आचार, चटनी बनाने में यह प्रयोग में लाते हैं।

### 7. निर्जलीकरण (सुखाना) :

फलों एवम् सब्जियों में नमी (पानी) को सुखा (उड़ा) देते हैं। घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा बढ़कर जब 70–72 प्रतिशत हो जाती है तो जीवाणु निष्क्रिय हो जाते हैं। धूप अथवा वायुसंचारित ओवेन द्वारा फल एवम् सब्जियों का निर्जलीकरण करते है। यह खजूर को छुहारा, अंगूर से किशमिश बनाने में प्रयुक्त होता हैं। मरूस्थल में पाये जाने वाले फल जैस सांगरी, केर तथा सब्जियां जैसे ग्वारफली, काचरी आदि को सुखाकर लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

**फल एवम् सब्जियों के प्रसंस्करण द्वारा तैयार पदार्थों का विवरण निम्नलिखित हैं–**

| फल/सब्जियां | परिरक्षित उत्पादों का विवरण |
|---|---|
| 1. आम | जैम, स्कवेश, चटनी, आचार, आम पापड़, रस |
| 2. आंवला | मुरब्बा, चटनी, आंवला रस, आंवला चूर्ण, च्यवनप्राश, कैंडी |
| 3. बेलपत्र | बेल रस, बेल शेक |
| 4. अनार | अनारदाना, रस |
| 5. नींबू | स्कवेश, आचार, मार्मलेड |
| 6. अमरूद | जैली, रस (आर.टी.एस.) |
| 7. लहसुवा | आचार |
| 8. खजूर | छुहारा, पिण्ड खजूर, जैम, रस |
| 9. अंगूर | रस, किशमिश |
| 10. केर | आचार, चूर्ण |
| 11. खेजड़ी | फली, बिस्कुट, पचकुटा (सब्जी) |
| 12. करोंदा | जैम, जैली, आचार |
| 13. टमाटर | केचप, रस, सोस, पयूरी, चटनी, पाउडर |
| 14. मिर्च | आचार, मसाला |
| 15. फूल गोभी | डिब्बाबन्दी, निर्जलीकरण, आचार |
| 16. मटर | डिब्बाबन्दी, हिमीकरण |
| 17. ग्वारफली | निर्जलीकरण |
| 18. लहसुन व प्याज | पाउडर |
| 19. अदरख | सोंठ |
| 20. मैथी | निर्जलीकरण |

***

# उद्यानिकी फसलों में पोषक तत्व प्रबन्धन : सिद्धान्त एवं तकनीकें

सीमा भारद्वाज, वी.एस. राठौड़, बीरबल, एन.एस. नाथावत एवं एम.एल. सोनी
*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

वर्तमान में हम खाद्य उत्पादन की बात करें तो साथ ही फल व सब्जी के उत्पादन को भी नकारा नहीं जा सकता है। गेहूं, चावल, दाल, दुग्ध के साथ–साथ फल व सब्जियां भी मानव आहार का प्रमुख घटक बन चुकी है। यह आवश्यक हो गया है कि सब्जियों व फल उत्पादन को भी बढावा मिले व इनके अधिक से अधिक उत्पादन लेने हेतु नई तकनीकें लाई जाए।

मृदा, जल, रोग व कीट प्रबन्धन जिस प्रकार फलोत्पादन के मुख्य घटक है उसी प्रकार पोषक तत्व प्रबंधन भी उद्यानिकी फसलों में उत्पादन का प्रमुख घटक है।

**पादप पोषक तत्व :** साधारणतः वह तत्व जिनकी पौध वृद्धि हेतु अनिवार्यता होती है व पादप के वानस्पतिक वृद्धि व संपूर्ण वृद्धि हेतु भी परम आवश्यक होते हैं वे अनिवार्य पोषक कहलाते हैं। पोषक तत्वों से पादप पोषण इन्हें अवशोषित करके लेते है।

पौधों हेतु आवश्यक पोषक तत्वों का वर्गीकरण तीन भागों में किया जा सकता है।

**1. मुख्य पोषक तत्व :** यह वे पोषक तत्व है जो पौधों के द्वारा ज्यादा मात्रा में ग्रहण किये जाते है। मुख्य पोषक तत्व नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाशियम है ये पोषक तत्व सामान्यतः भारतीय कृषक अपने खेत में रासायनिक खाद द्वारा देते है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट, केचुआं खाद में मुख्य पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

**2. सहायक पोषक तत्व :** यह वे पोषक तत्व है, जो कि मुख्य पोषक तत्वों से कम मात्रा में पौधों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। सहायक पोषक तत्व भी तीन होते हैं । कैल्सियम मैग्नीशियम और सल्फर ये पोषक तत्व भी मुख्यतः रसायनिक एवं जैविक खादों से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इनकी पूर्ति मृदा खनिजों द्वारा भी होती है।

जिन भूमियों में कैल्शियम की मात्रा उपयुक्त होती है वहां नींबू वर्ग के फलों का उत्पादन अच्छा होता है। सामान्यतः जिन मृदाओं में कैल्शियम व मैग्नीशियम की प्रचुर मात्रा विद्यमान रहती है। वहां मृदा पी.एच.मान लगभग सात या उससे नीचे होता है। ये पोषक तत्व अम्लीय प्रकार की मृदाओं में कम पाये जाते हैं।

**3. सूक्ष्म पोषक तत्व :** वे तत्व जो फलीय पौधों द्वारा बहुत कम मात्रा में लिये जाते हैं। उन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं। ये कम मात्रा में किन्तु इनकी उपस्थिति वृद्धि हेतु आवश्यक है। लौह

मैगंनीज, जिंक, तांबा, बोरान, मोलिब्डेनम और फ्लोरिन आदि सूक्ष्म तत्वों की श्रेणी में आते हैं। ये पोषक तत्व सीधे मृदा में या फिर पौधों की पत्तियों पर छिड़काव द्वारा दिये जा सकते हैं।

पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण सारणी 1 में दर्शाये गये हैं।

**सारणी – 1**

**पौधों में आवश्यक पोषक तत्व एवं कमी के लक्षण**

| | पोषक तत्व | | कमी के लक्षण |
|---|---|---|---|
| 1. | नत्रजन | – | पत्तियों मे हरापन कम होना |
| | | – | पुरानी पत्तियों का पीला पड़ना |
| | | – | नत्रजन की कमी तीव्र हो तो पत्तियों का मरना |
| 2. | फास्फोरस | – | पत्तियों के किनारे बैंगनी रंग होना |
| 3. | पोटेशियम | – | पत्तियो के किनारे जलना |
| 4. | कैल्शियम | – | (बड़) शीर्षस्थ कलिका का विकास रूकना |
| 5. | मैग्नीशियम | – | पौधें की पत्तियों का जलना |
| 6. | सल्फर | – | पत्तियो का हरा या पीला होना व पत्तियों का पीला पड़ना |
| 7. | जिंक | – | नई पत्तियों में पीलापन आना या सफेद होना |
| 8. | मैगंनीज | – | मटर में मार्स धब्बा आना |
| 9. | लौह | – | पौधे की पत्तियों में क्लोरोसिस |
| 10. | तांबा | – | पत्तियों का छोटा आकार |
| 11. | बोरोन | – | ऊपर की पत्तियों का जलना |
| | | – | पौधों के ऊपरी कली का जलना व फूलों का झड़ना व रोजट फार्मेशन होना |
| 12. | मालीबिडेनम | – | पत्तियों का पीला पड़ना, गोभी में विहपटेल रोग |

नींबू वर्गीय पौधों में खासकर सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से वृक्षों में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं खासकर जस्ते की कमी से पत्तियों का छोटा रहना तथा पत्तियों की नसों के बीच का रंग हल्का पड़ना फलों का गिरना, वृद्धि न होना आदि लक्षण पैदा हो जाता है।

मैगंनीज की कमी के कारण पत्तियों के मध्य का रंग धीरे–धीरे हल्का पड़ जाता है। यह लक्षण पूर्ण विकसित पत्तियों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। पौधों में इन तत्वों की कमी के दुष्प्रभाव को रोकने हेतु गौंण तत्वों का छिड़काव पेड़ों पर फरवरी व जुलाई में करना चाहिये।

आंवले में बोरोन की कमी होने के कारण फल गिरने की समस्या अधिक होती है। इस हेतु बोरेक्स का छिड़काव किया जाता है।

फूल गोभी में ब्राउनिंग (भूरापन) रोग बोरोन तत्व की कमी के कारण होता है। गोभी के फूलों पर गोल आकार के भूरें रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। जो बाद में फूल को सड़ा देते हैं। इसके नियंत्रण हेतु भी रोपाई से पूर्व खेत में 10–15 किलों बोरेक्स प्रति हैक्टेयर के अनुसार प्रयोग करना चाहिये।

मोलिबिडीनेम सूक्ष्म तत्व की कमी से भी नींबू वर्गीय पौधों में पीले धब्बे बन जाते हैं। फूल गोभी में भी मोलिबिडीनेम की कमी के कारण विह्पटेल रोग हो जाता है।

पोषक तत्व प्रबंधन इस हेतु आवश्यक है कि पौधे को उचित वृद्धि हेतु आवश्यक तत्वों की मात्रा प्रदान की जाए, मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ गौण/सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता को भी ध्यान में रखा जाए।

- पोषक तत्वों के स्त्रोत का चयन मृदा अनुरूप किया जाए।
- फसल से हरी पत्तियों या फलों का उत्पादन चाहिए उस अनुरूप नत्रजन उवर्रक की मात्रा निर्धारित की जानी चाहिए।
- बाग लगाते समय या सब्जियां उगाने से पूर्व मृदा परीक्षण द्वारा मृदा के पोषक तत्वों का स्तर भली प्रकार ज्ञात कर लेना चाहिए। ताकि उसमें उपस्थित मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्व का स्तर ज्ञात हो तद्उपरान्त दिया जाने वाले तत्व की मात्रा का निर्धारण होना चाहिए।
- तत्वों की आवश्यकता ध्यान रखने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि रसायनिक उर्वरक के साथ–साथ कार्बनिक खादों को भी पोषक तत्व स्त्रोत में उपयोग लाना चाहिए जो कि सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रदान करती है व साथ ही मृदा के भौतिक गुणों में भी सुधार करती है।
- पोषक तत्व प्रबंधन में उपयोग आने वाले उर्वरक या खाद का उपयोग उचित मात्रा में किया जाए। सही समय पर फल वृक्षों व सब्जियों में इन्हें डाला जाए व किस विधि द्वारा इन्हें डाला जाए यह भी महत्वपूर्ण पहलू है।

**विभिन्न सब्जियों की फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन हेतु ध्यान देने योग्य बातें इस प्रकार हैं –**

– बैंगन की फसल में जुताई के समय 120–150 क्विंटल गोबर की खाद या कम्पोस्ट खेत में अच्छी तरह बिखेर दे व फिर जुताई करें। अन्तिम जुताई से पूर्व 40 किलो नत्रजन 30 किलो फास्फोरस तथा 60 किलो पोटाश प्रति हैक्टयर की दर से समान रूप से मिलाकर जुताई कर पाटा लगा देवें और क्यारियां बना लेवें। संकर किस्मों में 60 किलो नत्रजन अन्तिम जुताई के समय देवे एवं फास्फोरस व पोटाश की मात्रा पूर्ववत रखें।

टमाटर की पौध रोपाई से एक माह पूर्व 150 क्विंटल गोबर की खाद खेत में डालकर भली–भांति मिला देवें। पौध लगाने से पूर्व 60 किलों नत्रजन, 80 किलो फास्फोरस एवं 60 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर के हिसाब से खेत में डाल देवें। पौधे लगाने के 30 दिन व 90 दिन बाद 30–30 किलो नत्रजन को खड़ी फसल में देकर सिंचाई करना चाहिए। संकर किस्मों में 300 से 350 क्विंटल गोबर की खाद, 180 किलो नत्रजन, 120 किलो फास्फोरस एवं 80 किलो पोटाश प्रति हैक्टयर की दर से दी जानी चाहिए।

मिर्च की फसल में अन्तिम जुताई के पूर्व प्रति हैक्टेयर लगभग 150 से 250 क्विंटल अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद भूमि में मिलावें। इसके अलावा 70 किलो नत्रजन, 48 किलो फास्फोरस तथा 50 किलो पोटाश की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई से पूर्व दी जानी चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा रोपाई के तीस दिन से पैंतालिस दिन के बाद दो बराबर भागों में खेत में छिड़क कर तुरंत सिंचाई कर देनी चाहिए।

कुष्माणुकुल/कद्दूवर्गीय फसलों मे 200–250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर खाद खेत तैयार करते समय डाले, 40 किलो प्रति हैक्टयर फास्फोरस, 40 किलो पोटाश व 26–30 किलो नत्रजन बुवाई के समय भूमि में मिलाकर देना चाहिए तथा शेष नत्रजन की मात्रा 32–32 किलो प्रति हैक्टयर दो बराबर भाग में बांटकर खड़ी फसल में प्रथम बार बुवाई के 25–30 दिन बाद व दूसरी बार फूल आने के समय देना चाहिए।

भिण्डी की फसल में खेत तैयारी के समय 120–200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद मिलावें। इसके अलावा 30 किलो नत्रजन 30 किलो फास्फोरस तथा 30 किलो पोटाश बुवाई के पूर्व प्रति हैक्टेयर की दर से देवें।

आलू की खेती में रोपण से एक माह पूर्व 250–350 क्विंटल प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद देकर खेत में मिला देना चाहिए। सामान्यतः 120–150 किलो नत्रजन, 80–100 किलोग्राम फास्फोरस एवं 80–100 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए।

फूल गोभी में 250–300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर सड़ी गोबर की खाद भूमि में मिला देनी चाहिए। 120–150 किलो नत्रजन, 80 किलो फास्फोरस तथा 60–80 किलो पोटाश प्रति हैक्टयेर की दर से देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा पौध लगाने के समय भूमि में मिला देनी चाहिए। बची हुई नत्रजन की मात्रा पौध लगाने के 6 सप्ताह बाद देवें।

रबी में प्याज की खेती हेतु अच्छी सड़ी गोबर की खाद 400–500 क्विंटल प्रति हैक्टेयर

की दर से खेत तैयार करते समय मिला देवें। इसके अलावा 10 किलो नत्रजन, 50 किलो फास्फोरस तथा 100 किलो पोटाश की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई से पूर्व खेत की तैयारी के समय देवें।

– गाजर की खेती में गोबर की खाद 250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से डालकर अच्छी तरह से मिला लेवें। गोबर की खाद के अलावा 60 किलो नत्रजन, 40 किलो फास्फोरस तथा 120 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर देवें इसमें से नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत की अन्तिम तैयारी के समय देवें। शेष बची हुई नत्रजन की मात्रा बुवाई के 45 दिन बाद खड़ी फसल में देवें।

– मूली का खेत तैयार करते समय भूमि में अच्छी तरह सड़ी गली गोबर की खाद 250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से देवें। बुवाई के एक दो दिन पहले 20 किलो नत्रजन, 48 किलो फास्फोरस तथा 48 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से देवें। जड बनने के समय खेत में 25 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर ऊपर से देवें।

– हरी पत्ती वाली सब्जियो में 100 क्विंटल सड़ी गोबर खाद, 25 से 30 किलो नत्रजन, 40 किलो फास्फोरस तथा 40 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर के हिसाब से भूमि में मिलाकर बुवाई करें। प्रत्येक कटाई के बाद 25 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से छिड़काव द्वारा देनी चाहिए।

फल वृक्षों में पोषक तत्व प्रबंधन हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि ये लम्बी अवधि तक पैदावार देते हैं इस हेतु पौधों के प्रारम्भिक वर्षों में देखभाल ज्यादा जरूरी है इस हेतु वृक्ष की आयु अनुरूप प्राथमिक वर्षों में खाद व उर्वरक की मांग भिन्न रहती है उसके पश्चात् स्थैतिक हो जाती है।

– बेर में खाद व उवर्रक वर्षो के अनुरूप सारणी – 2 में दिये गये हैं।

**सारणी–2 बेर वृक्ष में आयु अनुरूप सिफारिश की खाद व उर्वरक की मात्रा (किलोग्राम/पौधा**

| पेड़ की आयु (वर्ष) | गोबर की खाद | यूरिया | सुपर फास्फेट | पोटाश |
|---|---|---|---|---|
| 1 | 10 | 0.22 | 0.35 | 0.08 |
| 2 | 20 | 0.44 | 0.70 | 0.16 |
| 3 | 20 | 1.10 | 1.40 | 0.25 |
| 4 | 25 | 1.20 | 1.75 | 0.25 |
| 5 वर्ष व उसके बाद | 30 | 1.20 | 1.75 | 0.25 |

इनमें गोबर की खाद, यूरिया की आधी मात्रा और सुपर फास्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटा की पूरी मात्रा जून–जुलाई एवं बाकी बची हुई यूरिया की आधी मात्रा अक्टूबर–नवम्

में फल मटर के दाने के आकार की अवस्था पर देना चाहिए। खाद व उर्वरक देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए।

– आंवलें के वृक्षों में खाद व उवर्रक (सारणी–3) तने से 1 फुट दूर रख कर देना चाहिए। बोरोन हेतु बोरेक्स 0.6 प्रतिशत घोल का छिड़काव फल गिरने से रोकता है तथा फल बनने की क्रिया को तेज करता है। यूरिया की शेष आधी मात्रा अगस्त माह में देनी चाहिए।

**सारणी – 3**

**आंवले के वृक्ष में आयु अनुरूप सिफारिश की गई खाद व उर्वरक की मात्रा (किग्रा./पौधा)**

| पेड़ की आयु वर्षों में | यूरिया | सुपर फास्फेट | पोटाश | गोबर की खाद |
|---|---|---|---|---|
| 1 | 0.22 | 0.35 | 0.125 | 20 |
| 2 | 0.44 | 0.70 | 0.250 | 30 |
| 3 | 0.66 | 1.05 | 0.375 | 40 |
| 4 | 0.88 | 1.40 | 0.375 | 50 |
| 5 वर्ष एवं बाद में | 1.10 | 1 75 | 0.375 | 60 |

– अनार हेतु खाद व उर्वरक की आवश्यक मात्रा सारणी–4 में दी गई है।

**सारणी – 4**

**अनार के पौधे में आयु अनुरूप सिफारिश की गई खाद व उर्वरक की मात्रा (किग्रा./पौधा)**

| पेड़ की आयु वर्षों में | गोबर की खाद | यूरिया | सुपर फास्फेट | पोटाश |
|---|---|---|---|---|
| 1 | 8–10 | 0.10 | 0.25 | 0.50 |
| 2 | 16–20 | 0.20 | 0.50 | 0.50 |
| 3 | 24–30 | 0.30 | 0.75 | 0.100 |
| 4 | 32–40 | 0.40 | 1.00 | 0.150 |
| 5 वर्ष और उसके बाद | 40–50 | 0.50 | 1.25 | 0.150 |

अनार में देशी खाद, सुपरफास्फेट की पूर्ण मात्रा एवं यूरिय की आधी मात्रा फूल आने के करीब 6 सप्ताह पूर्व देवें। यूरिया की शेष आधी मात्रा फूल बनने पर देवें।

***

# बागबानी विकास हेतु मृदा संसाधन : जानकारी एवं प्रबंधन

एम.एल. सोनी, एन.डी.यादव एवम् सीमा भारद्वाज

*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

आदिकाल से ही मनुष्य जिन संसाधनों पर निर्भर रहा है उनमें सबसे प्रमुख मृदा ही है। मृदा हमारे भोजन का स्त्रोत है तथा कृषि उत्पादन का आर्थिक आधार है। साथ ही वन चारागाह, खनिज आदि का भी आधार मृदा ही है। कृषि उत्पादन के विभिन्न अवयवों में जल व उन्नत बीज के साथ मृदा के भौतिक व रासायनिक गुण जो मृदा उर्वरता मे अहम् भूमिका निभाते हैं, अति महत्वपूर्ण है। अतः किसी भी क्षेत्र विशेष में कृषि क्रियाओं के लिए जो मृदा जानकारी आवश्यक है, उनका बागवानी विकास हेतु उससे भी अधिक महत्व है। क्योकि सामान्यतया कृषि क्रियाओं हेतु ऊपर की 15 से.मी. उपज भूमि को मानक आधार माना जाता है जबकि बागवानी विकास हेतु 1 मीटर तक की मृदा की जानकारी अति आवश्यक है। अर्थात बागवानी पूर्व मृदा की 1 मीटर गहराई तक के गुणों का ज्ञान अति आवश्यक है।

**अपनी भूमि को जाने :**

किसी क्षेत्र के भूमि संसाधन की समझ, उसका उपयोग एवं प्रबंधन वहां के विकास तथ जीवन स्तर पर निर्भर करता है। किसी भी भूमि का मूल्य उसके आकार, स्थान विशेष तथ उत्पादकता के अलावा उसके उपयोग की संभावना पर निर्भर करता है। मिट्टी एक प्राकृति वस्तु है जो पत्थरों के चूर होने से बनी है तथा इसमें खनिज एवं जैविक अंग रहते हैं। मिट्टी की रासायनिक, भौतिक खनिज एवं जैविक विशेषता इस पर निर्भर करती है कि वह सतह से कितन नीचे है। मिट्टी की गहराई उस पर ली जाने वाली फसल को सीधे रूप से प्रभावित करती है खासकर उस स्थिति में जब उस भूमि पर बागवानी विकास का कार्य करना हो।

किसी भी क्षेत्र में बागवानी विकास के कार्यों से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह भूमि वांछित गहराई की हो क्योंकि कम गहराई वाली मिट्टी में फलदार वृक्षों की जड़ें पूर्ण रूप से फैल नहीं पाती जिसका सीधा प्रभाव फलोत्पादन पर पड़ता है। शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्र में फलदार वृक्षों जैसे बेर, अनार, नींबू, आंवला आदि हेतु 2–2.5 मीटर तक गहराई वाली मृदा को उपयुक्त माना गया है। फलदार वृक्षों हेतु भूमि का चयन करते समय दूसरी महत्वपूर्ण बा है जमीन का लवणीय व क्षारीय न होना। अन्य महत्वपूर्ण कारक जो फलदार वृक्षों की बढ़वा व उत्पादन को प्रभावित करता है वह है मृदा में 2 मीटर गहराई तक कंकड़–पत्थर का होन

शुष्क क्षेत्रों में कैल्शीयम कार्बोनेट के कंकड़ कुछ क्षेत्रों में 1 मीटर की गहराई पर ही प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार की मृदाओं में फलदार वृक्षों की खेती करने से पूर्व मृदा संस्तर में बदलाव अति आवश्यक है। मृदा सम्बन्धी अन्य जानकारियों में मृदा पी.एच., जलधारण क्षमता, उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा लवणता व क्षारीयता, चूने की मात्रा, जैविक कार्बन, जल निकास आदि महत्वपूर्ण है।

**जैविक/कार्बनिक खाद उत्पादन व प्रबन्ध :**

भारतीय मृदाओं में जैविक कार्बन की सर्वत्र कमी रही है। कार्बनिक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट आदि मृदा उर्वरता के बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है। गोबर की खाद बनाने के लिए आवश्यकता अनुसार उचित आकार का गड्ढा किसी ऊँचे स्थान पर खोद लेना चाहिए जहां पानी न भरता हो। गड्ढ़े की गहराई 1.25 मीटर से ज्यादा न हो क्योंकि विघटन करने वाले जीवाणुओं को अधिक गहराई पर आक्सीजन नहीं मिल पाती। गड्ढे की लम्बाई व चौड़ाई आवश्यकतानुसार 3 X 4 मीटर रखना चाहिए। गड्ढे का फर्श पक्का हो तो अच्छा रहता है वरना पोषक तत्व रिस कर नीचे चले जाते हैं। गड्ढा तैयार हो जाने पर इसमे गोबर व मल–मूत्र बिछावन प्रतिदिन डालते रहना चाहिए। जब गड्ढा भरकर भूमि से आधा मीटर ऊंचा हो जाये तो 15 सेमी. मिट्टी की मोटी तह से उसे ढक देना चाहिए। इस प्रकार 6 महीने में गोबर की खाद बनकर तैयार हो जायेगी। गोबर की खाद की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए उसमें 20 कि.ग्रा. फास्फोरस मिलाना चाहिए। इससे खाद में अमोनिया के रूप में होने वाली हानि कम होगी तथा फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ेगी।

**कम्पोस्ट खाद –**

घर का कूड़ा कचरा, पौधों के अवशेष, गोबर आदि द्वारा विशेष परिस्थिति में विच्छेदन होने से यह खाद बनती है। इसमें 0.5 से 1.0 प्रतिशत नत्रजन, 0.4 से 0.8 प्रतिशत फास्फोरस, 0.5 से 1.0 प्रतिशत पोटाश एवं आवश्यक गौण व सूक्ष्म तत्व व्याप्त होते हैं। कम्पोस्ट खाद बनाने हेतु कई विधियां प्रचलित है जिनमें नाडेप विधि, इन्दौर विधि, फास्फो कम्पोस्ट आदि प्रमुख है।

कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए 5 फुट चौड़ा व 3 फुट गहरा 10–21 मीटर लम्बा गड्ढा खोदकर उसे 3 से 6 भागों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक हिस्सा अलग–अलग भरा जाता है तथा अन्तिम हिस्सा खाद पलटने के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रत्येक भाग में पहली परत में पशुओं के कोठो का कचरा व फसल अवशेषों की 3–4 इंच मोटी परत बिछाई जाती है। इसके पश्चात पशु कोठों से एकत्रित किया हुआ पशुमुत्र मिश्रण की एक तह उसके ऊपर फैला दी जाती है। दूसरी परत के रूप में 2 इंच गोबर की और पशु कोठों की मूत्र मिश्रित मिट्टी की समान परत बिछाकर पर्याप्त पानी का छिड़काव करें। इस प्रकार 8 से 10 परत में गड्ढा जमीन से 1 फुट ऊपर तक भर जायेगा। सबसे ऊपर की परत पशुमुत्र एवं राख मिश्रित पशुकोठों की

गली मिट्टी की होती है। सुबह–शाम पानी का छिड़काव करते रहें ताकि कम्पोस्ट प्रक्रिया में नमी बनी रहे। सभी गड्ढों के भर जाने के 15 दिन पश्चात जो क्षेत्र खाली छोड़ा था उसमें पूर्व में भरे गये हिस्से का पूरा कचरा पलट दें। इस क्रिया में ऊपर का कचरा नीचे व नीचे का कचरा ऊपर हो जायेगा। तत्पश्चात अच्छी तरह से पानी डालकर नम कर दें। इस क्रिया के पश्चात गीली मिट्टी से पुनः भरे हुए गड्ढे को लीप दें। तीन माह पश्चात अच्छी पकी खाद तैयार हो जाती है। यह खाद काले रंग की मिट्टी जैसी गंध वाली होती है।

**वर्मी कम्पोस्ट :**

केचुओं की मदद से कचरे को खाद में परिवर्तित करने हेतु केंचुओं को नियंत्रित वतावरण में पाला जाता है। इस क्रिया को वर्मीकल्चर कहते हैं। केचुओं द्वारा कचरा खाकर जो कास्ट निकलती है उसे वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। इस विधि द्वारा कम्पोस्ट मात्र 45 दिनों में बनकर तैयार हो जाता है। वर्मीकम्पोस्ट बनाने हेतु सर्वप्रथम सूखी डंठलों के कचरे को बेड की लम्बाई–चौड़ाई के आकार में बिछा दें। इस पर सभी प्रकार के मिश्रित कचरे जैसे सूखा कचरा घास, किचन वेस्ट आदि की 4 इंच मोटी परत बिछा दें। इस पर अच्छी तरह पानी देकर गीला करें। इस पर सूखा गोबर 3–4 इंच मोटी तह बिछा दें। फिर पानी का हल्का छिड़काव करें। इस पर 1 वर्गमीटर के हिसाब से स्थानीय केचुंए छोड़ दें। इस पर पुनः हरी पत्तियों की 2–3 इंच तह देकर पूरी वर्मी बेड को सूखी घास अथवा टाट की बोरी से ढक दिया जाता है। करीब 40–60 दिन बाद वर्मी खाद तैयार हो जाती है। तब उसमें पानी देना बंद करते हैं तथा धीरे–धीरे ऊपर का खाद निकाल लेते हैं। नीचे की तरह जिसमें सभी केचुंए होते हैं उसे दूसरी वर्मीबेड पर डाल देते हैं ताकि वर्मीकम्पोस्ट की प्रक्रिया आरंभ हो जाए। फलदार वृक्षों में 10 कि.ग्रा. तक प्रति पौधा वर्मी कम्पोस्ट उपयोग करें।

**मृदा अपरदन प्रबंधन :**

मरू क्षेत्र में वायु द्वारा मृदा अपरदन एक गंभीर समस्या है। जिन क्षेत्रों में वायु वेग की अधिक तीव्रता होती है वहां बागवानी पूर्व यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि मृदा अपरदन को रोकने का पूर्ण प्रबंध कर लिया गया है। इसके अभाव में नये लगाये गये पौधे आस–पास के क्षेत्रों की मिट्टी द्वारा पूर्णतया ढक दिये जाते हैं। जिससे बागवानी विकास की सफलता की प्रतिशतता घट जाती है। जिस क्षेत्र मे बागवानी करनी है उसके चारों ओर खासकर दक्षिण पश्चिमी भाग में वायु दिशा के लम्बवत् मध्यम ऊंचाई के वायु अवरोध सेल्टर बेल्ट लगा दिये जाते हैं। जब वायु इन वायु अवरोधकों से टकराकर आगे निकलती है तो इसकी गति में कमी आ जाती है तथा मृदाह्रास कम होता है।

***

# उद्यानिकी फसलों में जल प्रबन्धन

एन.डी. यादव

*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

भारत वर्ष में 1960 के बाद कृषि उत्पादन में वृद्धि का मुख्य कारण आधुनिक कृषि तकनीकों, कृषि उपयोगी सामग्रियों जैसे खाद, उर्वरक, रसायनों, उन्नतशील फसलों की किस्मों एवं जल का समन्वित प्रयोग था। इसका परिणाम यह था कि भारतीय कृषि अपने नये आयामों में बढ़ते हुए पिछले तीन दशकों में उत्पादन को तीन गुना बढ़ा दिया। किन्तु बढ़ती जनसंख्याा की दर को ध्यान में रखते हुए संसाधनों का समुचित उपयोग एवं प्रति इकाई प्रयुक्त संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना आज की प्रथम प्राथमिकता बन गया है। पश्चिमी राजस्थान का एक बड़ा भू–भाग जो काश्त के अंतर्गत आता है कि उत्पादन क्षमता बारानी होने के कारण नगण्य है एवं पूर्णतः वर्षा पर आधारित है। इस क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने में 'जल' एक महत्वपूर्ण कारक है। जल का प्रबंधन क्षेत्र की कृषि उत्पादकता में कई गुना वृद्धि कर सकता है।

इस क्षेत्र में उद्यानिकी फसलों में प्रायः 30,000 है. क्षेत्र है जो काफी कम है किन्तु आने वाले दशकों में इस क्षेत्र में उद्यानों का क्षेत्र बढ़ने की काफी उम्मीद है। उद्यानिकी फसलों में कम पानी की आवश्यकता आने वाले दशकों में इसके क्षेत्र को बढ़ाने में काफी मद्दगार साबित होगा। यहां पर पैदावार की कमी अवश्य है किन्तु फलों की गुणवत्ता बहुत अच्छी है। उद्यानिकी फसलों में जल प्रबंधन, क्षेत्र की मृदा गुणवत्ता, जलधारण क्षमता, वातावरणीय दशाएं एवं वाष्पोत्सर्जन दर आदि पर निर्भर करता है। बलुई मृदा होने के कारण मृदा की जलधारण क्षमता कम है अत. सिंचाई देते समय सिंचाई अंतराल एवं सिंचित जल की मात्रा का ध्यान रखना अति आवश्यक हो जाता है। मृदा की अत्यधिक निक्षालन दर के कारण दिया गया अधिक जल मृदा में निचली सतहों में चला जाता है और पौधों के उपयोग में भी नहीं आ पाता है। इस प्रकार जल के समुचित उपयोग हेतु सुधारित जल उपयोग प्रणालियों का इस्तेमाल कर जल बचत के साथ–साथ जल उपयोग को बढाया जा सकता है। जल के अधिकतम उपयोग हेतु जल एवं भूमि प्रबंधन अति आवश्यक है। जल की एक–एक बूंद का कृषि में समुचित उपयोग हेतु निम्न तीन बिन्दुओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक है–

1. समुचित निश्चित समय पर फसल पौधों को पानी देना।
2. समुचित मात्रा में पानी देना।
3. समुचित विधि का प्रयोग करना ।

**सिंचाई विधियों का चुनाव** : सिंचाई की विधि का चुनाव सिंचाई की जाने वाली फसल, फलदार पौधों की किस्म उसकी जल आवश्यकता, बाग लगाने जाने वाली जगह के वातावरणीय स्थिति एवं मृदा की किस्म पर निर्भर करता है। जैसे बलुई मृदा में हल्की एवं कम अंतराल पर सिंचाई एवं भारी मृदा में अधिक पानी की मात्रा एवं अधिक समयांतराल पर सिंचाई करना चाहिए। फलदार पौधों की बढ़वार एवं पौधों की उम्र के आधार पर भी विधि एव मात्रा का निर्धारण किया जाता है। सिंचाई की कुछ मुख्य विधिया इस प्रकार है।

1. ***थाला सिंचाई :*** *सतही सिंचाई की सबसे आसान एवं प्रयोग की जाने वाली विधि है जिसमें* प्रत्येक पेड़ के चारों तरफ पौधें की उम्र के अनुसार थाला बनाया जाता है। सभी थालों को नालियों द्वारा जोड दिया जाता है। इन्हीं नालियों से पानी पौधों के थालों में दिया जाता है। ये थाले खाद एवं उर्वरक देने में भी काम आते हैं। इससे अधिक मात्रा में जल की आवश्यकता होती है तथा यह विधि प्रायः दोमट एवं भारी मृदाओं की स्थिति में प्रयोग की जाती है। जल की उपयोग दर कम होती है।

2. **मटका सिंचाई :** यह विधि साधारणतयः बलुई मृदा एवं जहां पानी की अत्यधिक कमी होती है वहां प्रयोग किया जाता है। इस विधि में जल का ह्रास कम होता है एवं बूंद–बूंद पानी पौधे की जड़ों को मिलता रहता है। यह साधारणतयः पौधों की प्रारंम्भिक अवस्था एवं उनके सुस्थापन के समय प्रयोग किया जाता है।

**सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियों का प्रयोग :**

**1. बूंद–बूंद (ड्रिप) सिंचाई विधि :**

सूक्ष्म सिंचाई विधियों में बूंद–बूंद (ड्रिप) सिंचाई पद्धति सबसे महत्वपूर्ण एवं उपयोगी विधि है। इसमें 70–80 प्रतिशत पानी की बचत होती है एवं ऊंची–नीची बलुई मृदा जिसका जल निक्षालन दर अधिक हो उसमें बहुत आसानी से प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति मरूक्षेत्रीय *दशाओं, कम वर्षा, अधिक तापमान एवं वाष्पोत्सर्जन एवं रेतीली मृदा एवं सूखा क्षेत्रों के लिए बहुत* उपयोगी है। इस विधि में पानी को धीरे–धीरे एक विशेष तरह के "नोजल" या "इमीटर" द्वारा पौधों की जड़ों में दिया जाता है। इस तरह के तंत्र में प्लास्टिक की मुख्य पाईप के साथ पतली लेटरल लाइनें होती है जिन पर ड्रिपर या इमीटर लगे रहते हैं। कभी–कभी यह इमीटर एक पतली नालिका द्वारा लेटरल से जोड़कर पौधों की जड़ों के पास लगा दिया जाता है। पूरा तंत्र एक पानी निक्षालन टैंक से जुड़ा रहता है जो एक निश्चित दाब 30–35 पी एस आई पर चलाया जाता है। इसी दाब के कारण ड्रिपर से बूंद–बूंद पानी पौधों को मिलता है। ड्रिपर की जल निकास क्षमता 4–8 ली. प्रति घंटा होती है। इस प्रकार आवश्यकतानुसार जल प्रत्येक पौधों को दिया जा सकता है।

**बूंद–बूंद सिंचाई विधि के लाभ :**

1. इस विधि में पूरा क्षेत्र में सिंचाई न देकर आवश्यक पौधों के पास सिंचाई (आशिंक भू–भाग) की जाती है जिससे जल की बचत होती है।
2. बचत किए गये जल से अधिक क्षेत्र को सिचित बनाया जा सकता है।
3. सीमित क्षेत्र में सिंचाई करने से वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल का ह्रास एवं भूमिगत निक्षालन द्वारा जल के ह्रास को रोका जा सकता है।
4. इस प्रकार इस विधि से जल उपयोग क्षमता 90–95 प्रतिशत तक होती है।
5. पौधों में फल की पैदावार, गुणवत्ता में भी वृद्धि होकर प्रति पौध लागत कम आती है।
6. इस विधि में खेत को समतलीकरण नहीं किया जाता है जिससे मजदूरी एवं ऊर्जा की बचत होती है। ऐसी मृदाएं जहां नाली एवं थाला सिंचाई संभव नही है वहां भी प्रयोग किया जा सकता है।
7. आंशिक भू–भाग को सिंचित करने से खरपतवार कम होते हैं एवं कुछ हद तक खारा जल का उपयोग भी सिंचाई हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।
8. इस विधि से उर्वरकों एवं भूमि जनित कीडों की रोकथाम हेतु रसायनों का प्रयोग किया जा सकता है जिससे उर्वरकों की उपयोगिता प्रतिशत में वृद्धि होती है।

इस प्रकार बूंद–बूंद सिंचाई तंत्र का प्रयोग कर जल की उपयोग क्षमता में वृद्धि के साथ–साथ जल की बचत एवं प्रति इकाई जल उपयोग से अधिक लाभ एवं उपज प्राप्त की जा सकती है।

**अनार में सतही एवं बूंद–बूंद सिंचाई का तुलनात्मक ब्यौरा निम्न तालिका मे दर्शाया गया है**

| सिंचाई विधि | उपज (क्वि./हे.) | सिचाई की गहरायी (सेमी.) | जल उपयोग क्षमता किग्रा./सेमी. |
|---|---|---|---|
| चेक वेसिन | 76.7 | 100 | 77.0 |
| बूंद–बूंद सिंचाई | 69.5 | 56 | 144.3 |

**लवणीय जल–सिंचाई** : बूंद–बूंद सिंचाई विधि द्वारा लवणीय जल का भी प्रयोग किया जा सकता है। राजस्थान, गुजरात एवं मध्य प्रदेशों में भूमिगत जल की गुणवत्ता अच्छी नहीं है एवं ज्यादातर क्षेत्र लवणीय–क्षारीय जल से प्रभावित है। ऐसे क्षेत्रों में बूंद–बूंद सिंचाई तंत्र के प्रयोग से फल वृक्षों को लगाया जा सकता है। बूंद–बूंद सिंचाई में जल का लवण जड़ों से दूर रहता है एवं निक्षालन द्वारा नीचे जाता रहता है। ऐसा देखा गया है सतही सिंचाई की अपेक्षा बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति से 6.5 डी. एस./मी. के इ.सी. का जल प्रयोग करने से दो गुणा ज्यादा पैदावार

मूली एवं आलू की प्राप्त हुई तथा फलदार पौधों की बढ़वार पर बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति में कम प्रभाव पडा जबकि संतही सिंचाई में पौधों की बढ़वार सबसे कम रही।

**विभिन्न फलदार पौधों के बगीचों में लाभ–लागत अनुपात निम्न प्रकार है (1993)**

| फलदार पौध | लाभ–लागत अनुपात | |
|---|---|---|
| | जल बचत के अलावा | जल बचत के साथ |
| अंगूर | 13.5 | 32.30 |
| केला | 1.52 | 3.62 |
| संतारा | 2.06 | 11.25 |
| अनार | 1.31 | 4.04 |
| पपीता | 1.54 | 4.01 |

इसके साथ ही साथ बूंद–बूंद सिंचाई तंत्र की कुछ सीमाएं है जिसमें तंत्र में ड्रिपर का रूक जाना बंद हो जाना, तत्र को अधिक कीमत, सीमित जल संचरण से पौधों की जड़ों की अधिक वृद्धि न होना, तथा तंत्र को चलाने की कम जानकारी एवं दक्षता बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति के प्रयोग में बाधा बन जाता है किन्तु ऐसे क्षेत्र जहां पानी की अत्यधिक कमी है जैसे मरूक्षेत्रीय पर्यावरण में यह तंत्र वरदान साबित हो रहा है।

**फव्वारा सिंचाई :**

यह विधि 60–70 प्रतिशत तक पानी का उपयोग करने में सक्षम है तथा बागवानी क्षेत्रों में यह पद्धति कृषि बागवानी पद्धति में अधिक कारगर साबित हुई है। इससे फल वृक्षों में सिंचाई के साथ ही साथ अंतः फसलों की भी काश्त आसानी से की जा सकती है। इसके साथ ही साथ पौधों को वर्षा के रूप में सिंचाई प्राप्त होने से पौधों की कैनोपी की अच्छी वृद्धि होती है। इस विधि में पानी का उच्च दाब पर फव्वारा के रूप में पेड़ों के ऊपर छिड़काव किया जाता है इसमें मुख्य लाईन पर 'नोजल' के द्वारा पानी गोलाई में छिड़काव होता है जिसकी व्यास लगभग 20–40 फीट तक होती है।

इस विधि में अधिक दबाव की आवश्यकता होती है। इसमें भी जमीन को समतल करने की आवश्यकता नहीं होती है। किन्तु अधिक वायुवेग एवं अत्यधिक तापमान की स्थिति में तंत्र को नहीं चलाना चाहिए अन्यथा जल का वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल का ह्रास अधिक होता है।

**सूक्ष्म फव्वारा तंत्र :** पौधों की कैनोपी या फैलाव के नीचे जड़ों में एक विस्तृत परिधि में पानी देने के लिए सूक्ष्म फव्वारा तंत्र का प्रयोग किया जाता है। इसमें पानी का छिड़काव पौधों के नीचे होता रहता है तथा वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल का ह्रास कम होता है। यह कम दबाव वाले फव्वारे होते हैं एवं एक ही जगह पर स्थित होते हैं।

**जेट :** यह बड़े आकार के फव्वारे होते है जो काफी ऊंचाई तक पानी का छिड़काव करते हैं एवं एक समय में काफी जल की मात्रा फव्वारे के रूप में निकालते हैं। ऐसे फव्वारों का प्रयोग बड़े वृक्षों की सिंचाई एवं एक ही साथ काफी क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है।

**जल संग्रहण :**

बारानी क्षेत्रों में जल वृक्षों को लगाने के लिए वर्षा जल संरक्षण का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। मरूक्षेत्रीय बारानी दशाओं में वर्षा जल को एक निश्चित आकार एवं ढाल के आधार पर बने जल संग्रहण थालों में वर्षा जल को एकत्र किया जाता है जिससे पौधों में काफी समय तक नमी बनी रहती है। जल संग्रहण हेतु पौधों के चारो तरफ 5 X 5 का 5 प्रतिशत ढाल के आधार पर एक 'थाला' बनाया जाता है। इस गड्डे में बेन्टोनाइट क्ले की एक परत बिछा दी जाती है जिससे जल का भूमिगत ह्रास कम होता है और काफी समय तक वर्षा जल पौधों को मिलता रहता है।

इस प्रकार उपरोक्त विधियों को अपनाकर उद्यानिकी फसलों में जल प्रबंधन किया जा सकता है।

***

# शुष्क क्षेत्रिय फल वृक्षों में समन्वित नाशीजीवी प्रबंधन

विजय शंकर आचार्य

*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

फल मनुष्य के भोजन का एक अभिन्न अंग है। ये मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक खनिजों एवं विटामिनों का प्रमुख स्त्रोत है। बीकानेर जैसे शुष्क जिले में फलों के पेड़ अधिकाशतः खेतों के किनारे तथा घरों के सामने खुले मैदान में लगाये जाते हैं किन्तु पिछले कई वर्षों में इनकी उन्नत बागवानी की तरफ विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। आजकल फल उत्पादन खेती का प्रमुख अंग बन गया है। जिले में लगभग 600 हैक्टर क्षेत्र में विभिन्न फलों की खेती की जाती है। क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से जिला अन्य जिलों से पिछड़ा है। इसका प्रमुख कारण विशेष भौगोलिक परिस्थितियां व फसलों में समय–समय पर लगने वाले कीट व रोग हैं। कीट व रोगों के नियत्रण के लिए कीटनाशक रसायनो के अंधाधुध व अनुचित उपयोग से कई समस्याएं उत्पन्न हो गई है जैसे गौण कीटों का प्रमुख कीटों में परिवर्तित होना, कीटों में कीटनाशकों के प्रति बढ़ती प्रतिरोधकता, खेतों से परजीवी परभक्षी कीटों का गायब होना, नये क्षेत्रों में नये कीट एवं रोगों क स्थापित होना एवं पर्यावरण प्रदूषण इस सब के बाद जो प्रत्यक्ष नुकसान किसान को हो रहा है वह है उत्पादन लागत कई गुना बढ़ गई है तथा लाभ घटता जा रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिकों ने किसानों के सामने कीट नियंत्रण की एक ऐसी विधि प्रस्तुत की जिससे न सिर्फ कीट व रोग कम होते हैं। बल्कि पर्यावरण प्रदूषण व उत्पादन लागत कम होती है। इस पद्धति को समन्वित नाशी जीवी प्रबन्धन (आइ.पी.एम.) नाम दिया।

समन्वित नाशीजीवी प्रबन्धन क्या है ?

कीट व रोग नियंत्रण का ऐसा तरीका जिसमें उन सभी उपयुक्त विधियों को अपनाया जाता है। जो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं वातावरण के प्रति सुरक्षित हो व जिसे अपनाकर कीट व रोग को आर्थिक नुकसान स्तर से नीचे रखकर उत्पादन बढाया जा सकता है।

प्रबन्धन कैसे करें ?

1. खेत वे उद्यान में मित्र एवं शत्रु कीट के बारे मे निरीक्षण एवं जानकारी रखना।
2. नाशीजीवों के नियंत्रण के लिए उन्हीं विधियों को अपनाना जिससे वातावरण प्रदूषित न हो।
3. कीटनाशक दवाओं का प्रयोग उचित मात्रा मे उस समय करें जब कीट व रोग बहुत अधिक हो अथवा आर्थिक नुकसान स्तर (ई.टी.एल.) पार कर गया हो।

**कीट प्रबन्धन विधियाँ :**

**1. बाग में पेड़ों की संख्या व विन्यास :**

फलों का बाग लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बाग में पेडों की संख्या उचित हो। पौधों की संख्या अधिक हो जाने से पेडों का उचित विकास नहीं होता साथ ही पेड़ों की शाखाओं के एक–दूसरे से सटे होने की वजह से कीटों के विकास व फैलाव के लिए उचित वातावरण मिलता है। घने बागों में सूर्य की गर्मी एवं धूप जमीन तक नहीं पहुंच पाती है। इसलिए कीटों का प्रजनन व वृद्धि तीव्र गति से होती है। इसलिए पौधों से पौधों एवं कतार से कतार की दूरी उपयुक्त हो।

**2. खेत व बाग की सफाई :**

खेत पर उगने वाले खरपतवरों को नष्ट कर देना चाहिए। ऐसा करने से कीटों की विभिन्न अवस्थाऐं जो इन पर विकसित होती है नष्ट हो जाती है। व प्रकोप होने की सम्भावना कम रहती है।

**3. समय पर निराई–गुराई करना :**

खेत में फसल के आस–पास समय–समय पर निराई गुडाई करते रहना चाहिए। ऐसा करने पर मुख्य फसल की जड़ों के आस–पास रहने वाले कीटों की विभिन्न अवस्थाऐं मिट्टी में दब कर मर जाती है। अथवा सतह पर आने से धूप की गर्मी की वजह से सूख कर अथवा चिड़ियों द्वारा खाकर नष्ट हो जाते हैं।

**4. पेड़ के नीचे गिरे पत्तों को जलाकर नष्ट करना :**

कुछ कीटों की पूर्ण विकसित लटे पेड़ों के नीचे गिरे पत्तों की सहायता से प्यूपा में परिवर्तित हो जाती है एवं अपना जीवनयापन करती है इसलिए इन पत्तियों को इक्ट्ठा कर जला देना चाहिए जिससे इन कीटें का फैलाव रूक जाता है।

**5. हाथो द्वारा कीटों का एकत्रीकरण :**

जो कीट सुस्त व पड़े होते हैं। उनको हाथ से पकड़ कर नष्ट किया जा सकता है। कुछ कीटों के अण्डे व लटे आसानी से दिखाई दे जाते हैं। अण्डों को हाथ से पत्तियों सहित तथा लटों को हाथ से पकड़कर आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

**6. पेड़ें में कटाई छटाई :**

समय–समय पर पेडों की कटाई छटाई करते रहना चाहिए। ऐसा करते समय कीट व रोग से प्रकोपित शाखाओं, प्ररोह, फूलों आदि को काट कर नष्ट कर देना चाहिए। इससे कीट व रोग क फैलाव रूक जाता है।

**7. क्षतिग्रस्त व गिरे हुए फलों को नष्ट करना :**

क्षतिग्रस्त व गिरे हुए फलों में कीट की विभिन्न अवस्थाऐं रहती है इसलिए इन्हें एकत्र

कर नष्ट कर देना चाहिए जिससे इन कीटों के जीवन चक्र को तोड़ा जा सके।

**8. पेड़ों की ढीली छाल को खुरचना :**

पेड़ों के तनों से ढीली व सूखी छाल को चाकू की सहायता से खुरच कर नष्ट करते रहना चाहिए। ऐसा करने से कीटों को अण्डे देने व लटों को प्यूपा बनने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं मिलता। जिससे इनका प्रकोप अपेक्षाकृत कम हो जाता है।

**9. पेड़ों से कीटों के घोसलें व बुनी हुई पत्तियों को नष्ट करना :**

पेड़ों पर बने हुए पर्णजालक, कीटों के घोसलें कीटों सहित तोड़कर जला देने चाहिए। इससे कीटों द्वारा होने वाली क्षति व फैलाव रूक जाता है।

**10. तनों पर पट्ट रचना :**

मिली बग पेड़ों के आस–पास अण्डे देती है। उनसे निकलने वाले निम्फ तनों से रेंगकर पेड़ पर चढ़ते है। इनके नियंत्रण के लिए ग्रीस या तारकोल या पोलीथीन तथा ग्रीस का पट्टा लगाते है। इससे कीट पेडो पर चढ नहीं पाते। आम की मिल बग के नियंत्रण में आम तौर पर यह विधि प्रयोग में लाई जाती है।

**11. तनों व शाखाओं को बोरे या मोटे कपड़े से साफ करना:**

स्केल कीट व छाल कीटों में यह विधि अपनानी चाहिए। तनों पर कीटों एवं मलमूत्र से बनी हुई सुरगों को मोटे कपड़े से रगडकर साफ कर देना चाहिए। शाखाओं एवं टहनियों पर चिपके हुऐ कीट के शल्कों व अण्डों सहित मादा को रगड़कर छुडा देना चाहिए। ऐसा करने से इन कीटों का विस्तार व एक मौसम से दूसरे मौसम तक जाने का क्रम टूट जाता है।

**12. नुकीले तार द्वारा तना बेधकों को छेद कर मारना :**

तना बेधकों की लटे तनों में सुरंग बनाकर रहते हैं। इनको नुकीले मोटे तार की मदद से छेद कर नष्ट किया जा सकता है। आम, अमरूद, जामुन, कटहल सेव, अंगूर आदि के तना बेधकों व छाल कीटों को इस प्रकार छेद कर मारा जा सकता है।

**13. रसायनिक नियंत्रण :**

उपरोक्त विधियों के प्रयोग से भी यदि कीटों का नियंत्रण न होता हो, तो रसायनिक विधि का प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशी रसायनों का प्रयोग करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि अमुक कीटनाशी रसायन कीट विशेष को मारने में सक्षम है या नहीं। उसकी उचित मात्रा क्या है ? इसका असर कितने दिनों तक रहता है। इनके अलावा कीटनाशी रसायन प्रयोग में लेने से पूर्व कुछ महत्वपूर्ण बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

– जो कीट जमीन में अंदर रह कर पौधों के आन्तरिक भाग या जमीन के नीचे वाले भागों को नष्ट करते हैं। या रात्रि में जमीन से निकलकर पौधों की उपरी भागों को क्षति पहुंचाते हैं।

उन्हें मारने के लिए काफी समय तक सक्रिय रहने वाले कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।

– कट वर्म, या तनों व पत्तियों पर खाने वाले कीटो के लिए ऐसा कीटनाशी रसायन प्रयोग में लेना चाहिए जो कीटों की त्वचा या भोजन के साथ उनके शरीर में प्रवेश करके कीट को मारते है। जैसे, थायोडान, कारबारिल, मैलाथियान, आदि।

– पर्ण सुंरगक, सफेद मक्खी, पिरिका कीट, रसद कीट तथा पत्तियों का रस चूसने वाले कीटों को सामान्यतः सर्वांगी कीटनाशक द्वारा मारना चाहिऐ। इस प्रकार के कीटनाशी जब पौधे पर छिड़के जाते हैं तो पौधा उनको सोख लेता है। और फिर विष सारे पौधे में फैल जात है। परिणाम स्वरूप पौधे का आन्तरिक रस भी विषैला हो जाता है। जब कीट इस प्रकार के विषयुक्त पौधे का रस चूसते हैं तो मर जाते है। जैसे, डाइमिथोएट, मेटासिस्टाक्स, डाइमेक्रोन आदि।

– तना बेधक कीटों के लिए सर्वागी दानेदार चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। जैसे कार्बोयूरेटस, थिमेट आदि ये कीटनाशी जमीन के अन्दर पौधों के चारों ओर 5–7.5 सेमी. की गहराई पर डालकर मिला दिए जाते हैं।

– मुलायम तनों व प्ररोहो को छेदने वाले कीटों के लिए सर्वांगी कीटनाशक भी उपयुक्त रहते हैं। बड़े पेड़ों पर चूसने वाले जाल मेकर कीट या तना बेधकों के लिए जिस डाल या तने में कीट का प्रकोप हो उसमें छेद करने वाली मशीन में सुराख बनाकर पिचकारी से कीटनाशी को छेद में भर देते हैं। इसके बाद छेदर को मिट्टी से बंद कर देते है।

– भ्रमणशील कीटों से फसल को बचाने के लिए सामान्यतः संस्पर्श विष या अमाशयी कीटनाशक काम में लेने चाहिए। इसके अलावा अपने खेत के चारों तरफ एक गहरी नाली खोद देनी चाहिए जिसमें मिथाइल पैराथियान पाउडर भुरक देनी चाहिए।

– एक कीट को मारने के लिए लगातार एक ही कीटनाशक दवा का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे कीट में उस रसायन के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न हो जाती है।

– जब पेड़ों पर फूल आ रहे हों या फल तोड़ने में 10 से 15 दिन का समय रह गया हो, तो कीटनाशक रसायनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

**फल वृक्षों पर लगने वाले प्रमुख कीट व उनका प्रबन्धन**

**1. बेर**

फल मक्खी : यह बेर का सबसे हानिकारक कीट है। जब फल छोटे व हरे रहते है। तब कीट का आक्रमण शुरू हो जाता है। शुरू में फल में एक लट पाई जाती है। छोटे फल इसके प्रकोप से काणे हो जाते है। लेकिन बड़े फलों के आकार में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। इसके प्रकेप से बीज के चारों ओर एक खाली स्थान हो जाता है। तथा लटे अन्दर से पूरा फल खाने के बाद बाहर आ जाती है। इसके बाद यह मिट्टी में प्यूपा के रूप में छिप जाता है। कुछ दिन

बाद इससे मक्खियां बनकर तैयार हो जाती है व इनका पुनः आक्रमण फलों पर शुरू हो जाता है।
प्रबन्धन .

– बाग के आस–पास के क्षेत्र से बेर की जंगली झाड़ियों को हटा देवें।

– प्रकोपित फलों को इक्ट्ठा कर नष्ट कर देवे।

– मई जून मे बाग की मिट्टी पलटते रहे।

– बेर के पौधे में जिस समय अधिकांश फल मटर के आकार के बनने लगे उस समय एण्डोसल्फान 25 ई.सी. 1 मिली या डाइमिथोएट 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें व दूसरा छिड़काव इसके 15–20 दिन बाद करें।

चेफर बीटल : बेर का यह प्रमुख हानिकारक कीट है। इसका प्रकोप जून–जुलाई मे अधिक होता है। यह पेड़ की नई पत्तियों एवं प्ररोहो को खाकर नुकसान करता है। वर्षा शुरू होते ही इसका आक्रमण शुरू हो जाता है।

प्रबन्धन :

जून माह में पहली वर्षा के तुरन्त बाद कार्बोरिल 50 डब्ल्यू.पी. चार ग्राम प्रति लीटर पानी की दूर से पेड़ों पर ठीक तरह से छिड़काव करें।

छाल भक्षक कीट : यह कीट बेर के पेड़ की छाल को खाता है। तथा छिपने के लिए अन्दर शाखाओं में गहराई तक सुरंग बना लेता है, जिससे डाल/शाखा कमजोर हो जाती है।

प्रबन्धन :

– सूखी शाखाओं को काट कर जला देवें।

– एण्डोसल्फान 35 ई.सी. 2 मिली लीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर शाखाओं तथा डालियों पर छिड़के, साथ ही सुरंग के अन्दर कीटनाशक डाले और बाहर से गीली मिट्टी से बन्द करें।

**नींबू प्रजाति के फल :**

नीबू की तितली : यह नींबू प्रजाति के फलों को प्रमुख हानिकारक कीट है। इसकी लटे प्रारम्भ में चिड़िया के बीट की तरह दिखाई देती है। अण्डों से निकलने के तुरन्त बाद यह पत्तियों को खाने लगती है तथा नुकसान पहुंचाती है।

प्रबन्धन :

– पेड़ों की संख्या अधिक नहीं हो तो लटों को पेडों से चुनकर मिट्टी के तेल मिले पानी में डालकर मार देना चाहिए।

– अधिक प्रकोप होने पर एण्डोसल्फान 35 ई.सी. या क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

– फल चूसक पतंगा : यह कीट नींबू वर्गीय फलों में सुराख करके रस चूसता है। जिससे सक्रंमित भाग पीला पड जाता है। फल की गुणवत्ता कम हो जाती है।

प्रबन्धन :

– प्रकाश पाश का प्रयोग कर पतंगों को इक्ट्ठा कर नष्ट करना चाहिए।

– शीरा या शक्कर 100 ग्राम के एक लीटर घोल में दस मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. मिलाकर प्रलोभक तैयार करके मिट्टी के प्याले में 100 मिलीलीटर प्रति प्याला के हिसाब से पेड़ों पर कई स्थानों पर टांग देना चाहिए।

– मैलाथियान 50 ई.सी. एक मिली लीटर को प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

लीफ माइनर, सिट्रस सिल्ला एव रेड स्पाइडर माइट : लीफ माइनर की लटे बहुत छोटी तथा यह पत्तियों में सुरंग बनाती है। सिट्रस सिल्ला का आक्रमण नई पत्तियों तथा कोमल भागों में होता है। यह पत्तियों से रस चूसते है। जिसके कारण पत्तियां सिकुड़ती है। इस कीट का प्रकोप वर्षा एवं बसंत ऋतु में ज्यादा होता है। रेड स्पाइडर माईट पत्तियों की ऊपरी सिटों से रस चूसती है व बहुत नुकसान पहुंचाती है।

प्रबन्धन :

– फास्फोमिडान 85 एस.एल. आधा मिली लीटर प्रतिलीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। सिट्रस सिल्ला के लिए नई पत्ती आने पर छिड़काव करना अति आवश्यक है।

**आंवला :**

छाल भक्षक : यह आंवला का प्रमुख हानिकारक कीट हो यह वृक्ष की छाल को खात है तथा छिपने के लिए डाली में गहरई तक सुरंग बनाता है। जिससे डाल कमजोर होकर टूट जाती है।

प्रबन्धन :

– सूखी शाखाओं को काट कर जला देवें।

– एण्डोसल्फान 35 ई.सी. 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर शाखाओं तथा डालियों पर छिड़काव करें तथा साथ ही सुरंग को साफ करके पिचकारी की सहायता से 3 से 5 मिलीलीटर मिट्टी का तेल प्रति सुरंग डाले या फोहा बनाकर सुरंग के अन्दर रख देवे एवं बाद में सुरंग को गीली मिट्टी से बन्द कर देवें।

**अनार :**

अनार की तितली : इस कीट की मादा पुष्प बनते समय पुष्प कली पर अण्डे दे देती है इन अण्डों से लटे निकलकर बनते हुए फलों में प्रवेश कर जाती है। फल को अन्दर से खाती है। फलस्वरूप फल सड़कर गिर जाते हैं।

प्रबन्धन :

– बाग में साफ–सफाई रखें खरपतवार को समय–समय पर निकालते रहे।

– फूल व फल बनते समय कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 2 से 4 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

मिली बग : इसके अवयस्क शिशु प्रायः नवम्बर दिसम्बर में बाहर निकलकर तने के सहारे चढ़ते हुए वृक्ष की कोमल टहनियों एवं फूलों पर एकत्रित हो जाते है तथा रस चूसकर नुकसान पहुंचाते है इनके प्रकोप से फल नहीं बन पाते। इस कीट के द्वारा मीठा चिपचिपा पदार्थ छोड़ा जाता है। जिसमें काला कवक लग जाता है।

प्रबन्धन :

– पेड़ के आस–पास की जगह को साफ रखें।

– अगस्त सितम्बर तक पेड़ की थावले की मिट्टी को पलटते रहे जिससे अण्डे बाहर आकर नष्ट हो जाए

– क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत या एण्डोसल्फान 4 प्रतिशत या मिथाइल पैरथियान 2 प्रतिशत चूर्ण 50–100 ग्राम प्रति पेड़ थाले में 10–25 सेन्टीमीटर की गहराई में मिलावें।

– शिशु कीट को पेड़ पर चढ़ने से रोकने के लिए नवम्बर में 30–40 सेमी. चौड़ी 400 गेज एल्काथिन की पट्टी जमीन से 60 सेमी. की ऊंचाई पर तने के चारों ओर लगावे तथा इसके निचले 15–20 सेमी. भाग तक ग्रीस का लेप कर देवें।

– यदि पेड पर मिली बग चढ़ गई हो तो डाइमिथोएट 30 ई.सी. 1.5 मिलीमीटर या मिथाइल पैराथियान 50 ई.सी. या फेनाथियान 50 ई.सी. 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

**खजूर :**

दीमक व स्केल कीट खजूर के प्रमुख कीट है। इन कीटों के प्रबन्धन के लिए समय–समय पर उपाय अपनाने चाहिए।

– दीमक के नियंत्रण के लिए क्लोरोपाइरीफास 20 ई.सी. कीटनाशक दवा को सिंचाई जल के साथ प्रति माह प्रयोग करें।

– स्केल कीट के नियंत्रण हेतु प्रभावित पत्तियों को काट देना चाहिए तथा डाइमिथोएट 1 मिली लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

***

# उद्यानिकी फसलों में पौध व्याधि प्रबंधन

एस.एल. गोदारा एवं एस.के. बैरवा

*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

फलों व सब्जियों का प्रयोग हमारे जीवन में अति महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिस्थितियों में इनका अधिकाधिक उत्पादन व इनकी गुणवता अति आवश्यक है। राजस्थान के इस शुष्क क्षेत्र में बहुत कम ही फल व सब्जियों की खेती की जाती है। इन फलों व सब्जियों का अच्छा उत्पादन लेने के लिए किसानों को आधुनिक कृषि विधियों की जानकारी होना आवश्यक है। फलों व सब्जियों में कीट एवं व्याधियों का प्रकोप ज्यादा होता है और ये इनके उत्पादन एवं गुणवता को प्रभावित करते हैं। फलों व सब्जियों में लगने वाले मुख्य रोगों के लक्षण व उनकी रोकथाम के बारे में इस आलेख में वर्णन किया गया है।

## (अ) शुष्क क्षेत्र में फलों के प्रमुख रोग व उनकी रोकथाम

शुष्क जलवायु में फलों की खेती बहुत कम क्षेत्र में की जाती है। इस क्षेत्र में उगाये जाने वाले फलों में मुख्यतः बेर, आंवला, खजूर, अमरूद, अनार व नींबू वर्गीय फल हैं। इन फलों का अच्छा उत्पादन लेने के लिए आधुनिकी कृषि तकनीकी का उपयोग करना चाहिए।

### (1) अमरूद

**म्लानि** : यह अमरूद का सबसे विनाशकारी रोग है। भारत में यह रोग दो प्रकार की कवकों द्वारा होता है जिन्हें फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम और फ्यूजेरियम सोलेनाई कहते हैं। प्रथम कवक उत्तर प्रदेश में पाई जाती है और दूसरी कवक पश्चिम बंगाल में। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम बरसात में दिखाई देते हैं। रोगी पेड़ों की पत्तियां भूरे रंग की हो जाती हैं और पेड़ मुरझा जाता है। छिलके की सतह बदरंग हो जाती है। प्रभावित पेड़ों की डालियां एक–एक करके सूखने लगती हैं। प्रभावित हिस्से को काटने पर कैम्बियम तक ऊतक बदरंग हो जाते हैं। प्रभावित पेड़ों की जडों के संवहन ऊतकों के अवरुद्ध हो जाने से पानी व अन्य पोषक तत्व ऊपर नहीं जा पाते हैं, फलस्वरूप पेड़ सूख जाता है। यह रोग उन क्षेत्रों में अधिक तीव्र हो जाता है जहां की मृदा का पी.एच.मान 7.5 से अधिक होता है। भूमि की नमी भी रोग को फैलाने में सहायक होती है।

रोकथाम :–

रोकथाम के लिए मृदा उपचार रोग के फैलाव को रोक सकता है। जिन पेड़ों में रोग लगा हो, उन्हें निकालकर जला देना चाहिए। रोगी पेड़ों को निकालने के बाद गड्ढे की मिट्टी को 3 ग्राम थायरम कवकनाशक दवा को एक लीटर पानी में घोलकर (लगभग 20 लीटर प्रति

गड्ढा) उपचारित करना चाहिए। थायरम के स्थान पर एक ग्राम बेनलेट प्रति लीटर पानी में घोलकर उपचारित करने से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

**एनथ्रेकनोज** : यह रोग कोलेटोट्रोइकम सिडिआई नामक कवक द्वारा फैलता है। रोग का प्रकोप मुख्यतः फलों पर होता है। इसके लक्षण बरसाती फलों पर अधिक दिखाई देते हैं। सर्वप्रथम फलों पर खुरदरे धब्बे बन जाते हैं जो आपस में मिलकर बढ़ जाते हैं। रोग के बढ़ने के साथ फलों का ज्यादातर भाग प्रभावित हो जाता है। सतह के फल सिकुड़ जाते हैं और इनका रंग भूरा हो जाता है। प्रभावित फलो का बाजार भाव गिर जाता है और भंडारित फलों में सड़न पैदा हो जाती है। इस रोग का आक्रमण शाखाओ, पुष्प कलिकाओं और फूलों पर भी देखा गया है। फलों का रोग ग्रस्त भाग बड़ा हो जाता है और फल फट भी जाते हैं। रोगी पेड़ ऊपर से सूखना प्रारंभ कर देते हैं।

रोकथामः–

रोग की रोकथाम के लिए बाग को साफ रखना चाहिए। प्रभावित फलों व अन्य भागों को काटकर जला देना चाहिए। 2–3 ग्राम फाइटोलान (50 प्रतिशत) नामक कवकनाशक दवा को एक लीटर पानी के हिसाब से घोलकर 10 दिन के अन्तर पर 4–5 बार छिडकना चाहिए। भंडारण के लिए स्वस्थ फलों को चुनना चाहिए। एपिलकर किस्म इस रोग के प्रति कुछ सहिष्णु पाई गई है।

**पौध अंगमारी** : यह रोग राइजोक्टानिया नामक कवक द्वारा फैलता है। नर्सरी के प्रारंभ के छह महीनों में ही इस रोग का प्रकोप होता है। सर्वप्रथम पतियों पर छोटे गोल अनियमित आकार के भूरे धब्बे बनते हैं। नम वातावरण में धब्बे पूरी पत्ती और पर्णवृंत पर फैल जाते हैं। प्रभावित पत्तियां मुरझा कर गिर जाती हैं। रोग का अधिक प्रभाव होने पर तना भी प्रभावित हो जाता है। तने पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं और अन्त में पूरा पौधा सूख जाता है।

रोकथाम :

रोग की रोकथाम के लिए 2 ग्राम केपटान या बाविस्टीन को एक लीटर पानी के हिसाब से घोलकर 10 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिए।

**तना कैंकर** : तना कैंकर रोग डिप्लोडिया नेटालेन्सिस नामक कवक के द्वारा होता है। रोग के लक्षण सर्वप्रथम डालियों पर लबी दरारों के रूप में अक्टूबर में दिखाई पड़ते है। बाद मे डालियों की छाल फट जाती है और रोग जड़ की तरफ बढ़ने लगता है। प्रभावित छाल गहरे भूरे या भूरे रंग की हो जाती है। खुरचने पर भूरे या काले रंग की धारियां छाल के नीचे तक पाई जाती हैं। प्रभावित भाग के ऊतक मर जाते हैं। ऊतक मर जाने से पोषक तत्वों का आवागमन बंद हो जाता है। अधिक प्रभावित पेड़ शीघ्र ही सूख जाते हैं।

यह कवक अमरूद के फलों का शुष्क विगलन रोग भी पैदा करता है। यह रोग फलों में अगस्त में देखा जा सकता है। रोग वर्षा व कीटों द्वारा फैलता है। इलाहाबाद सफेदा इस रोग से बहुत प्रभावित होता है लेकिन सरदार किस्म इस रोग का प्रतिरोधी है।

रोकथाम :

रोग की रोकथाम के लिए प्रभावित डालियों को काटकर जला देना चाहिए ओर कटे हुए भागों पर बोर्डो लेप कर देना चाहिए। छंटाई के बाद 2–3 ग्राम ब्लाइटाक्स–50 को एक लीटर पानी के हिसाब से घोलकर 10 दिन के अंतर पर 2–3 छिड़काव करने चाहिए। वर्षा ऋतु में प्रभावित पेड़ों को बॉविस्टीन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़कना चाहिए। प्रभावित भागों को खुरचकर उन पर कॉपर आक्सी क्लोराइड और अलसी के तेल के 1:1 अनुपात के लेप को लगाना चाहिए। अधिक प्रभावित पेंड को उखाड़ कर जला देना चाहिए।

**(2) बेर**

चूर्णिल आसिता : विभिन्न रोगों में संभवतः सबसे अधिक हानि चूर्णिल द्वारा होती है। पुष्प एवं फलों पर सफेद आवरण सा पड़ जाता है, ग्रसित पुष्प और फलों की वृद्धि रुक जाती है तथा वे बिना विकसित हुए ही गिरने लगते हैं। इससे उपज पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम :–

रोग की रोकथाम के लिए कैराथेन (100 मिली 100 लीटर पानी ) का घोल सितम्बर से 1 माह के अंतराल पर 3–4 बार छिड़कने से काफी लाभ होता है।

**कज्जली शैवाल** : यह रोग इारिओप्सिस शैवाल से फैलता है। इसमें पतियों की निचली सतह पर काले धब्बे बनते हैं जो धीरे धीरे फैलकर पूरी सतह पर छा जाते हैं। रोग की तीव्रता होने पर पूरी निचली सतह मुड़ जाती है। ऊपरी सतह का रंग पीला भूरा हो जाता है और पत्ती झड़कर गिर जाती है।

रोकथाम :

रोग की रोकथाम के लिए (डाइथेन एम.45) 0.25 प्रतिशत अथवा कॉपर आक्सी क्लोराइड (ब्लाइटाक्स) के 0.3 प्रतिशत का 15 दिन के अंतर 2–3 बार छिड़काव करने पर रोग नियंत्रण किया जा सकता है।

**(3) आंवला**

आंवला में रोगों के कारण बहुत भारी हानि नहीं होती है, फिर भी कुछ रोगों से उपज में कमी हो ही जाती है और फलों का रंग रूप खराब हो जाता हे।

**वलय किट्ट** : यह एक कवक रोग है। पत्तियों पर गोल व अंडाकार लाल धब्बे बनते हैं।

रोकथाम

रोग की रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम–45 के घोल का छिड़काव 7–21 दिन के अंतर पर करने की सलाह दी जाती है।

**पती किट्ट** : यह भी कवक रोग है। इसके लक्षण जुलाई से सितम्बर तक पत्तियों एवं फलों पर आते है। इसके लिए उपरोक्त वर्णित उपचार किया जा सकता है।

**फल विगलन रोग** : इस बीमारी से ग्रसित फल अक्टूबर–नवम्बर तक पेड़ पर दिखाई देते हैं परंतु इसका मुख्य प्रकोप फलों पर उस समय होता है जब इन्हें तोड़कर बाजारों में भेजते हैं। इस बीमारी कें प्रभाव से पहले फलों पर जलासिक्त बनते हैं। प्रभावित भाग बढ़ता जाता है और सुनहरे पीले रंग के पिन के सिरे के आकार के एक समान क्षत बनते जाते हैं। इनमें से कवक की पूरी कालोनी जैतून के हरे रंग में बदल जाती है और नई कालोनी के किनारों पर बनती जाती है। फल पिलपिला हो जाता है और बाद में सिकुड़ जाता है। यह रोग पेनिसिलियम आक्जेलियम था ऐस्परजिल नाइजर कवकों के कारण होता है।

रोकथाम:–

इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि जिन फलों पर ऐसे लक्षण पेड़ पर दिखाई दें, उन्हें बाजार भेजने के लिए अन्य फलों के साथ नहीं रखना चाहिए। फलों की तोड़ाई करते समय फलों को किसी प्रकार की चोट से हानि न हो।

**(4) खजूर**

**उकटा रोग** : यह राग फ्यूजेरियम आक्पोरियम नामक कवक से होता हैं आरंभ में पत्तियों के आधार पर एक तरफ सफेदी आ जाती है और रोग बढ़ता जाता है, फलस्वरूप पतियां नष्ट होने लगती हैं। नवीन पतियों का निकलना रुक जाता है। शीर्षकलिका नष्ट हो जाती है और पूरा पेड़ सूख जाता है।

रोकथाम:–

इसकी रोकथाम के लिए बाग में लूसर्न की फसल कभी नहीं लेनी चाहिए। रोगी अंगों को निकाल देना चाहिए।

**पुष्पकम विगलन रोग** : इस रोग का कारक माउजिनेस्ला स्केटी हैं। चिकनी मिट्टी वाले बागों में यह रोग अधिक पाया जाता है। गंभीर अवस्था में लगभग 50 प्रतिशत फल नष्ट हो जाते हैं। बसंत ऋतु में पुष्पकम की पंखुड़ियों पर छोटे लाल भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। धीरे धीरे रोग मुख्य अक्ष और शाखाओं पर फैल जाता है।

रोकथाम:–

रोकथाम के लिए प्रभावित भागों को अलग करके और 0.3 प्रतिशत थीरम दवा का

छिड़काव करना चाहिए।

**शाखा व पत्ती विगलन रोग** : यह रोग डिप्लाडिया फाइनीकम नामक कवक से होता है। नवीन प्रशाखाओं को इस रोग से भारी हानि पहुंचती है। वृक्ष में घाव बन जाते हैं।

रोकथामः–

रोग के सन्देह होने पर 4:4:50 बोर्डो मिश्रण अथवा 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल का छिडकाव करना चाहिए।

**मिथ्याकंड (ग्राफियाला फिनिक्स)** : इस रोग में पत्तियों की दोनों सतहों पर भूर रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। अधिक रोगी पत्तियां सूख जाती हैं। वातावरण में आर्द्रता अधिक होने पर यह रोग अधिक लगता है।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम के लिए प्रभावित भागों पर 4:4:50 बार्डो मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए।

**(5) नींबूवर्गीय पौधे**

**कैंकर रोग** – यह रोग जीवाणु द्वारा होता है, जिसे जैंथोमोनास सिट्राई कहते हैं। रोग के लक्षण पत्तियां पर हल्के पीले धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं जो बाद में भूरे और खुरदरे हो जाते हैं। बाद में रोग टहनियां, कांटे और फलों पर भी आ जाता है। उचित रोकथाम के अभाव में प्रभावित पत्तियां व टहनियां मरने लगती है। कागजी नींबू व देशी नींबू पर यह रोग अधिक आता है। पौधों की रोगी पत्तियां गिरने लगती हैं। शाखाओं एवं खुरदरे धब्बे बनते हैं व बाद में शाखाएं टूटने लगती हैं। नम वातावरण में यह रोग फलों को अधिक प्रभावित करता है। इनकी सतह पर भूरे रंग की मध्य से फटे, खुरदरे व कार्कनुमा धब्बे बनते हैं जिन सभी फल रोगग्रसित हो जाते हैं। नर्सरी व बड़े पौधों में भी यह रोग पाया जाता है।

रोकथामः–

इस रोग की रोकथाम के लिए रोग ग्रसित शाखाओं का इकट्ठा करके नष्ट करना चाहिए एवं रोग ग्रसित टहनियों की कांट छांट करके रोग का फैलने से रोका जा सकता है। नया बाग लगाते समय पौधे रोग रहित व स्वस्थ होने चाहिए व लगाने से पूर्व पौधे को ताम्रयुक्त कवकनाशी से (0.3 प्रतिशत) उपचारित करें। बाग में रोग का प्रकोप को कम करने के लिए कटाई–छंटाई के बाद विशेषकर जून से अक्टूबर तक स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 250 मिलीग्राम एवं ब्लाइटोक्स (फाइटालान–50) 2.5 ग्राम का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल से छिडकाव करना चाहिए। इन दवाओं का छिड़काव करना चाहिए। इन दवाओं का छिड़काव फरवरी माह में भी करना चाहिए।

**गोंदाति रोग**– यह रोग फाइटाफ्थोरा जाति के कवक द्वारा होता है। इस वंश की तीन

प्रजातियां गोदांति फैलाती है।

(i) फाइटोफ्थोरा सिट्रोफ्थोरा (Phytophthora citrophthora)

(ii) फाइटाफ्थोरा पाल्मीवोरा (Phytophthora palmivora)

(iii) फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका (Phytophthora Parasitica)

यदि ये जातियां तने पर आक्रमण करती हैं तो उत्पन्न रोग का गोदांति तना विगलन एवं यदि जड़ों पर आक्रमण करती हैं तो फाइटाफ्थारा मूल विगलन कहते हैं।

इस रोग से प्रभावित तनों पर भूमि के पास से टहनियों के रोग ग्रसित भाग से गोंद जैसा पदार्थ रिसता है व छाल पर बूंदों के रूप में इकट्ठा होने लगता है। छाल सूखने लगती है, फट जाती है व भीतरी भाग भूरे रंग का हो जाता है। अंत में छाल सड़ जाती है, रोगग्रसित पौधों की पत्तियां गिरने लगती है व पौधों की जड़ें भी सडने लगती हैं जिसे रोग ग्रसित पेड़ मरने की स्थिति में पहुंच जाते हैं।

रोकथामः–

प्रतिरोधी मूलवृन्त जैसे जट्ठी खट्टी नारंगी, कलीयोपेट्रा संतरा, ट्राइफालिएट ओरेंज व रंगपुर लाइम का ही चयन करना चाहिए। मूलवृन्त पर 30–45 सेमी. की ऊंचाई पर कलिका बांधना चाहिए। सिंचाई का पानी तने के सीधे संपर्क में नहीं आने देना चाहिए। रोग ग्रति पौधों की छाल तेजधार वाले चाकू से उतारकर बोर्डो लेप करना चाहिए व बाद में ताम्रयुक्त कवकनाशी के 0. 3 प्रतिशत का या बोर्डो मिश्रण (2:2:50) का चार–पांच छिड़काव 15 दिन क अंतराल से करना चाहिए। यदि रोग का प्रभाव पौधों की जड़ों में हो तो प्रभावित जड़ों को काटकर बाविस्टीन या केप्टान का (0.3 प्रतिशत) घोल बनाकर डालना चाहिए।

**डाईबेक (उलटा सुखा रोग)** – इसे एन्थ्रेक्नाज रोग भी कहते हैं। इस रोग से पत्तियों पर भूरे बैंगनी धब्बे बनते हैं, शाखाएं ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती हैं व भूरे रंग की हो जाती हैं। पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं। फल छोटे आकार व सिकुड़े हुए लगते हैं व गल जाते हैं। यह रोग कार्यिकीय असंतुलन व कवक दोनों द्वारा फैलता है यह रोग किन्नों व माल्टा को ज्यादा प्रभावित करता है।

रोकथामः–

सबसे पहले रोग प्रभावित शाखाओं की कांट छांट करनी चाहिए, कटी हुई शाखाओ पर ताम्रयुक्त कवकनाशी (ब्ल्यू कॉपर या फाइटोलॉन) का लेप लगाना चाहिए। गर्मी में तनों पर चूने का लेप करना चाहिए। पूरी छंटाई के बाद पेड़ों पर ताम्रयुक्त कवकनाशी या मेन्काजेब 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर 15 दिन के छिड़काव (वर्षा ऋतु में) करना आवश्यक है।

**विषाणु रोग–** नींबू वर्गीय फल विषाणु रोगों से अधिक प्रभावित होते हैं। जिनमें ट्रिटेजा एक्जोकॉरटिस सोरोसिस सिट्रस रिंग स्पोट लैदरी पति रोग व सिट्रस माजेक रोग नींबू वर्गीय पौधों पर लगते हैं।

**ट्रिस्टेजा रोग–** इस रोग से प्रभावित पेड़ों की पत्तियां पीली होकर झड़ जाती हैं। पत्तियों के गिरने पर शाखाएं ऊपर की तरफ से मरना शुरू हो जाती हैं। प्रभावित पेड़ों की जड़ों की बढ़वार रुक जाती है तथा इन पौधों पर पुष्प कलिकाएं अधिक संख्या में आती हैं व फल बनने के बाद सूख जाते हैं। यह रोग दो प्रकार के लक्षण प्रकट करता है :

(i) पेड़ों का धीरे–धीरे सूखना, (ii) पेड़ों का अचानक व तेजी से सूखना;

इनके साथ साथ ये विषाणु रोग विशिष्ट लक्षण प्रदर्शित करता है। जैसे (अ) कलम बांधने वाले स्थान के नीचे छाल में मधुमक्खी के छत्ते की तरह गड्ढे बनना। इन गड्ढों के अंतर की लकड़ी के उत्तक कांट के समान उठे रहते है। (ब) पत्तियों की तनो का पीला हो जाना– इस रोग का प्रसार प्रभावित मूलवृंत, संकुर डाली या रोग वाहक कीटों माहू की कई जातियां, द्वारा होता है। इन माहू में टॉक्सोप्टेरा सिट्रीड़िस प्रमुख हैं। अमरबेल भी रोग फैलाने का कारण हो सकती है।

रोकथाम:–

रोग ग्रसित पौधों को पहचान कर उखाड़ देना चाहिए। नये पौधे तैयार करने के लिए रोग प्रतिरोधी मूलवृंत्तों जैसे क्लियोपेट्रा संतरा, जट्टी–खट्टी, रंगपुर लाइम, ट्राइफोलिएट ओरेंज का प्रयोग करना चाहिए। पौध बीजों द्वारा तैयार करना चाहिए। रोग वाहक एफिड (माहू) को कीटनाशक दवाओं के लगातार उपयोग से नियंत्रित किया जा सकता है।

**हरितन रोग :** यह रोग माइकोप्लाज्मा द्वारा होता है। पत्तियों पर जस्ते की कमी की तरह के लक्षण उत्पन्न होते हैं। पीले भाग में कहीं कहीं हरे द्वीप दिखलाई पड़ते हैं। पर्ण शिराएं पीली पड़ जाती हैं। पीला भाग एक ओर मध्य शिरा तथा तीन ओर पार्श्व शिराओं से घिरा रहता है। पत्तियों का छोटी व मोटी हो जाना, पेड़ का सीधा ऊपर की तरफ़ बढ़ना तथा पत्तियों का गिर जाना अन्य लक्षण है। किसी भी मौसम में फूल व फल आ जाती हैं तथा शाखाएं ऊपर की तरफ सूखने लगती हैं। फल छोटे, अविकसित व कच्चे ही गिर जाते हैं। एक एक करके भी शाखाएं सूखने लगती हैं।

हरितन रोग संक्रमित सांकुर डाली से और रोग वाहक कीट सिट्रस सिल्ला से फैलाया जाता है। रोगी पौधों से भोजन ग्रहण करने बाद माइकाप्लाज्मा, कीट के शरीर में 8–12 दिन तक वृद्धि करता है और एक सिल्ला कीट 76 दिनों तक संक्रामक बना रह सकता है।

रोकथाम:–

प्रमाणित नर्सरी से ही पौध लेनी चाहिए। रोगी पौधों को नष्ट कर देना चाहिए। ट्रैटासाइक्लीन

दवा का छिड़काव या तने में टीके से रोग की रोकथाम की जा सकती है।

## (ब) सब्जियों के प्रमुख रोग व उनकी रोकथाम

### कद्दू वर्गीय सब्जियों के प्रमुख रोग–

कद्दूवर्गीय सब्जियों का उत्पादन राजस्थान में अच्छा होता है परंतु बहुत से रोग इन सब्जियों के उत्पादन को प्रभावित करते हैं। इन सब्जियों की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग इस प्रकार हैं :–

**(i) छाछया या चूर्णिल आसिता रोग**– यह रोग एरिसाइफी सिकोरिसियेरम और स्फेकियाथिका फ्यूलियजेना नामक फफूंद से होता है। इस रोग के कारण कद्दूवर्गीय सब्जियों की बेलों व पत्तियों पर तथा अधिक प्रकोप होने की स्थिति में डण्ठलों व फलों पर सफेद चूर्ण सा जमा हो जाता है। इससे बेलों की बढ़वार रुक जाती है। पत्तियां सूखना प्रारंभ हो जाती है। फल भी कमजोर हो जाते हैं तथा पैदावार कम हो जाती है। यह रोग मुख्य रूप से वायु द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम के लिए डायनोकेप 48 ईसी–1 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर 15–15 दिन के अंतराल पर छिड़काव को दोहराते रहना चाहिए।

इस रोग की रोकथाम सल्फर पाउडर अर्थात गन्धक का चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकाव करके भी की जा सकती है।

(ii) **तुलासिता या मृदुरोमिल आसिता रोग**– यह रोग स्यूडोपेरोनोस्पोरा क्यूबन्सिस फफूंद से होता है। इस रोग के प्रकोप से कद्दूवर्गीय सब्जियों की पत्तियों के नीचे की सतह पर फफूंदी जमी हुई प्रतीत होती है।

रोकथामः–

अधिक रोगी बेलों में जाइनेब या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 10 दिन के अंतराल से छिड़काव करना चाहिए। तथा कापर आक्सी क्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिडकाव करके भी रोग की रोकथाम की जा सकती है। जहां संभव हो रोग रोधी जातियों का प्रयोग करना चाहिए।

(iii) **एन्थ्रेकनोज या झुलसा रोग**– यह रोग केलिटाट्राइक लेजिनरियम नामक फफूंद से फैलता है। इस रोग से विशेष तौर पर खरबूजे, लौकी व खीरे में अधिक हानि होती है। यह रोग पर्ण शिराओं पर धब्बे के रूप में दिखाई देता है जो बाद में लगभग 1.0 सेंटीमीटर व्यास के हो जाते हैं। इनका रंग भूरा तथा आकार कोणीय होता है। रोगग्रस्त पत्तियां कई धब्बों के कारण

सूख जाती हैं।

अनुकूल वातावरण में यह धब्बे पौधो व अन्य भागों व फलों पर भी पाए जाते हैं। यह रोग मुख्य रूप से मृदोढ है परंतु बीज द्वारा भी फैलता है।

रोकथाम :–

बीजों को पारायुक्त कवकनाशी जैसे – थाइरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।

रोग के लक्षण दिखाई देते ही थाइरम 2 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर या केप्टान 3 किलाग्राम प्रति हैक्टेयर का छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर छिड़काव को 15 दिन से दोहराते रहना चाहिए।

(iv) **फल विगलन रोग** – यह रोग विभिन्न जाति के फफूंद जैसे पिथियम अफेनी , फ्यूजेरियम स्पीन, राइजोक्टानिया स्पीसीज, स्केलेराशियम रोल्फाई, कोइनीफोरा कुकर बिटेरम, आफोनियम स्पीसीज व फाइटोफ्थारा स्पीसीज के कारण फैलता है। यह रोग तोरई, लौकी, करेला, परवल व खीरा में पाया जाता है। प्रभावित फलों पर गहरे हरे धब्बे बन जाते हैं जो कि बाद में मृदुगलन का रूप ले लेते हैं। ऐसे फल जो मृदा के संपर्क में आते हैं उनमें रोग लगने की अधिक संभावना रहती है। भंडारण मे यदि भूल से कोई रोगग्रस्त फल पहुंच गया तो स्वस्थ फलों को प्रभावित कर देती है। ये सभी फफूंद मृदोढ़ है।

रोकथामः–

यदि फल का भूमि से संपर्क कम किया जा सके तो रोग कम लेगा। इसके लिए भूमि पर बेलों एवं फलों के नीचे पुआल व सरकण्डे बिछा देना चाहिए।

रोग का फैलाव रोकेन के लिए जाइनेब का 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

**(v) मोजेक रोग**– यह रोग कुकुमिस विषाणु 1,2 व 3 से होता है। मोजेक रोग के लक्षण पौधो के सभी वायव भागों पर पाए जाते हैं। पत्तियों पर एकान्तर हरे व पीले धब्बे बनते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां विकृत, झुर्रिदार, छोटी व कभी कभी नीचे को मुड़ी हुई होती हैं। इनकी शिराओं को हरा तथा पीला पड़ना रोग का सामान्य लक्षण है। रोग का असर फलों पर भी पड़ता है जो चितकबरे एवं विकृत होते हैं। कभी कभी उनका रंग सफेद हो जाता है व टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं। विषाणु बीजोढ़ हो सकते हैं व अन्य परपोषी व खरपतवारों पर उत्तरजीवी रह सकते हैं। खेत में रोग का प्रसार माहू द्वारा होता है।

रोकथाम –

रोगग्रस्त पौधों को तुरंत नष्ट कर देना चाहिए।

रोग का प्रसार रोकने के लिए डाइमेथोएट 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव व 15 दिन के अंतर से करना चाहिए।

इमीडाक्लारोप्रिड 0.20 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल के छिड़काव से भी रोग का प्रसार रोका जा सकता है।

(vi) **जड़ ग्रंथि रोग**– यह रोग मेलाइडोगाइन जवानिका, मेलाइडोगाइन इन्कागिटा और मेलाइडोगाइन आरिनरिया सूत्रकृमि से होता है। लगातार एक ही खेत में कद्दूवर्गीय सब्जियां लेते रहने से इसका विस्तार अधिक होता है। इसे पौधों की पत्तियां पीली पड़कर झुलसने लगती हैं। तने का रंग पीला पड़ने लगता है। जड़ों पर छोटी छोटी गांठ पड़ जाती है तथा फसल की पैदावार पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम –

उचित फसल चक्र अपना कर सूत्रकृमि को नष्ट किया जा सकता है।

- फसल रोपाई करने वाले खेत में 1.4 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में डालकर बुवाई करनी चाहिए।
- ग्रीष्म ऋतु में खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर उसे सूर्य के ताप लगाने के लिए छोड़ देना चाहिए। इससे सूत्रकृमि के अंडे, लार्वा मादा आदि नष्ट हो जाएंगे जिससे इनका प्रकोप कम हो जाएगा।
- सूत्रकृमि की रोकथाम हेतु भूमि में बुवाई करने से पूर्व बड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट 150–200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से मिलानी चाहिए।
- सब्जी की पौध तैयार करने के लिए नर्सरी में बीजों की बुवाई पूर्व एल्डीकार्ब 4 ग्राम या कार्बोफ्यूरान 12 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से बीज के नीच कतारों में डाल देना चाहिए ताकि आरंभ में जड़–ग्रंथि रोग को पनपने से रोका जा सकता हैं।

**मिर्च की प्रमुख व्याधियां एवं उनके रोकथाम**

(i) **आर्द्र गलन रोग**– यह पौधशाला में उगे छोटे पौधों में होने वाला प्रमुख रोग है, जो कि फफूंद पिथियम, राइजोक्टानिया या फाईटोपथ्थेरा द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग के प्रकोप से पौधों का जमीन की तह के पास वाला तने का भाग मलकर सड़ जाता है और छोटे पौधे गिरकर सूख जाते है।

रोकथाम –

इस रोग की रोकथाम हेतु नर्सरी में बुवाई पूर्व बीज का उपचार कार्बेन्डाजिम 50 डब्लू.पी., थाइरम या केप्टान, 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें।

– नर्सरी की क्यारियों का खेत की सामान्य सतह से 6 इंच की ऊंचाई पर रखें।

– नर्सरी में बीज बोने से पहले नर्सरी का भूमि उपचार फफूंद नाशी केप्टान या थाइरम 4–5 गाम प्रति वर्गमीटर क्षेत्र की दर से करें।

– फसल में रोग के लक्षण दिखाई देते ही (जमाव के 15–20 दिन बाद) बाविस्टान या डाइथेन एम–45, 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल तैयार कर छिड़काव करें।

(ii) चूर्णील आसिता या छाछया रोग– यह राग एरीसाइफी कैपिस्की नामक फफूंद से फैलता है। इसके प्रकोप से पत्तियों पर सफेद चूर्णयुक्त धब्बे बनने लगते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में पत्तियां पीली होकर सूखने व झड़ने लगती हैं।

रोकथाम –

उन्नतशील किस्मों के प्रमाणित बीजों का चयन करें एवं उपचारित बीज ही बोएं।

रोग के लक्षण दिखाई देने पर कैराथियान एल.सी.1 मिलीलीटर या घुलनशील गंधक 2 ग्राम प्रतिलीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार मात्रा में घोल तैयार कर फसल पर शाम के समय 10–12 दिन के अंतराल पर 2–3 छिड़काव करें।

(iii) **श्याम वर्ण एवं फल सड़न (एन्थ्रेक्नोज एवं राइप रोट) रोग**– यह फफूंद जनित रोग है जो कि कोलेटाट्राइकम कैप्सिकी नामक फफूंद से फैलता है। इस रोग की शुरू की अवस्था में पत्तियों पर छोटे छोटे काले रंग के धब्बे बनने लगते हैं जो कुछ दिनों में बड़े धब्बों का रूप धारण कर लेते हैं जिससे पत्तियां सूखकर गिरने लगती हैं। रोग के प्रकोप का यह प्रभाव पौधे की एक दो शाखाओं पर अथवा सभी शाखाओं पर भी हो सकता है। रोग के इस तरह के लक्षणों का शीर्षरम्भी अथवा डाइबैक कहते हैं। इस रोग के लक्षण पके फलों पर छोटे छोटे काले धब्बों/फफोलों के रूप में भी देखे जा सकते हैं। रोगी फल सिकुड़ कर बदरंगे हो जाते हैं, जिससे फलों की उत्पादन क्षमता एवं गुणवत्ता प्रभावित हो जाती है।

रोकथाम–

रोग के लक्षण दिखाई देने पर डाइथन एम–45, थाइथेन जड–78, 2 ग्राम या कार्बेन्डाजिम 50 घुलनशील चूर्ण 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर आवश्यकतानुसार मात्रा में घोल तैयार कर 10 दिनों के अंतराल पर शाम के समय फल में 2–3 बार छिड़काव करें।

– बुवाई हेतु उपचारित बीज बोएं।

– 2–3 वर्षीय फसल चक्र अपनाएं, स्वच्छ तथा खरपतवार रहित खती करें एवं खेत में जल निकास का उचित प्रबंध रखें एवं जल भराव न होने दें।

**(iv) जीवाणु जनित पत्ती धब्बा (बैक्टरियल ब्लाइट) रोग–**

यह राग जैन्थामोनास नामक बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न होता है। रोग के लक्षण पत्तियों पर उठे हुए भूरे व छोटे छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। रोगी पत्तियां सूखकर झड़ने लगती

है। रोग के लक्षण हरे, कच्चे एवं अधपके फलों पर भी देखे जा सकते हैं। यह रोग श्याम वर्ण एवं फल सड़न रोग की अपेक्षा तेजी से फैलता है और कुछ ही दिनों में संपूर्ण फसल में फलफूल कर अधिक नुकसानप्रद सिद्ध होता है।

रोकथाम–

पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर कापर आक्सीक्लोराइड 2 ग्राम व स्ट्रेप्टासाइक्लिन 0. 25 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार मात्रा में घोल तैयार कर 10–12 दिनों के अंतराल पर फल पर शाम के समय 2–3 छिड़काव करें।

**(v) पर्ण कुंचन–विषाणु (लीफ कर्ल–मौजेक) रोग–**

यह मिर्च की फल का बहुत ही घातक रोग है जो कि रोग वाहक एक सफेद मक्खी (बमिसिया टैवकी) द्वारा प्रसारित किया जाता है। इस रोग के प्रकोप से पत्तियां मुड़कर सिकुड़ जाती हैं व उनमें झुर्रियां दिखाई देने लगती हैं तथा रोगी पौधों की पत्तियां स्वस्थ पौधों की अपेक्षा छोटी रह जाती है। मौजेक रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों पर गहरे या हल्के पीलेपन के साथ उभरे हुए धब्बे बनने लगते हैं। रोगी पौधों पर फूल व फल नहीं लगने या लगते भी हैं तो बहुत ही कम व छोटे आकार के फल लगते हैं।

रोकथाम–

इस रोग से संकमित पौधों को उखाड़ कर जला दें या पॉलीथिन में बंद कर मिट्टी में दबा दें।

–रोग के प्रसार का स्वस्थ पौधों में फैलने से रोकने के लिए डाइमेथोएट 30 इसी या मिथाइल डिमटान 25 ईसी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल तैयार कर शाम के समय फसल पर छिड़काव करें।

–नर्सरी तैयार करते समय तथा बीज की बुआई पूर्व कार्बोफ्यूरान 3 जी या फोरट 10जी 8–10 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब के भूमि में मिलाएं।

–नर्सरी में पौधे उगाने के 15–20 दिनों बाद डाइमथोएट का सुझाए गए तरीके के अनुसार छिड़काव करें।

–पौधे रोपाई के 15–20 दिन बाद डाइमेथोएट या क्यूनालफास एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल तैयार कर शाम के समय फसल पर छिड़काव करें तथा आवश्यकता पडने पर 15–20 दिन बाद यह छिड़काव पुनः दोहराएं।

–फूल व फल बनने की अवस्था पर रासायनिक कीटनाशकों के बजाय वानस्पतिक कीटनाशकों या कम जहरीले कीटनाशकों का ही छिड़काव करें ताकि तैयार फलों को तोड़ते समय कीटनाशकों के इस्तेमाल के समय अंतराल का विशेष ध्यान रखें।

(3) गोभी वर्गीय सब्जियों की प्रमुख व्याधियां एवं नियंत्रण :

(i) भूरी गलन या लाल सडन रोग– यह रोग बोरोन तत्व की कमी के कारण होता है। गोभी के फूलों पर गोलाकार भरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो कि बाद में फूल को सड़ा देता है।

रोकथाम–

इस रोग के नियंत्रण हेतु रोपाई से पूर्व खेत में 10 से 15 किलोग्राम बोरोक्स प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में मिला दें अथवा खड़ी फसल पर 0.2–0.3 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

(ii) **आर्द्र गलन**– यह रोग गोभी की अगेती किस्मों में नर्सरी अवस्था में होता है। जमीन की सतह पर स्थित तने का भोग काला पड़कर कमजोर हो जाता है तथा नन्हे पौधे गिरकर मरने लगते हैं।

**रोकथाम–**

नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को थाइरम या केप्टान 2–3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।

– रोग के लक्षण दिखाई देने पर कापर आक्सीक्लोराइड–50 का 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर नर्सरी में छिड़काव करें।

(iii) **काला सड़न रोग**– यह रोग जेन्थोमानास नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है। बीजों की क्यारी में नई पौधे पर यह रोग अधिक लगता है। पौधों की पत्तियों के किनारों पर जगह जगह पीले चकते दिखाई देते हैं व शिराएं काली दिखाई देती हैं। उग्र अवस्था में यह रोग गोभी के अन्य भागों पर भी दिखाई देता है जिससे फूल का डण्ठल अन्दर से काला पड़ जाता है।

रोकथाम –

इस रोग की रोकथाम हेतु बीजों को बुवाई से पहले स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 मिलीग्राम अवदा बाक्स्टिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 2 घंटे तक भिगोकर छाया में सुखाएं व बुवाई करें।

– पौधरोपण से पूर्व पौधे की जड़ों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन एवं बाविस्टिन के घोल में एक घंटे तक डूबोकर लगावें।

– फसल में रोग के लक्षण दिखने पर उपरोक्त दवाओं का छिड़काव करें।

(iv) **झुलसा रोग**– इस रोग से पत्तियों पर गोल आकार के छोटे एवं बड़े भूरे धब्बे बन जाता है तथा उनमें छल्लेनुमा धारियां बनती है, अन्त में ये धब्बे काले रंग के हो जाते हैं।

रोकथाम–

इस रोग की रोकथाम हेतु जाइनेब या मैन्कोजेब दवा 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव आवश्यकतानुसार 15 दिन के अंतराल पर दोहरावें।

***

# उद्यानिकी फसलों में प्लास्टिक पलवार का प्रयोग

जितेन्द्र गौड़

*स्वामी केशवानन्द कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

हमारे देश में कृषि का अधिकांश क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है। वर्षा की अनिश्चितता, सिंचाई के साधनों की कमी तथा कृषि उत्पादन की बढ़ती हुई मांग ने जल के समुचित उपयोग हेतु प्रेरित किया है। जिन क्षेत्रों में नहरें व सिंचाई के पर्याप्त साधन हैं वहां भी जल का समुचित उपयोग नहीं होने से जल प्लावनता, भू लवणीयता, भू क्षरण आदि गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। शुष्क रेतीले क्षेत्रों में खेती करना और भी कठिन है क्योंकि वहां मृदा में जल शीघ्र गहराई में उतर जाता है, साथ ही मृदा की सतह से जल का वाष्पीकरण बहुत अधिक होता है। अतः जल के समुचित उपयोग के साथ–साथ मृदा से जल वाष्पीकरण को रोककर नमी संरक्षण पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

हमारे पूर्वज भी इन आवश्यकताओं से भिज्ञ थे तथा वे मृदा–जल के वाष्पीकरण को कम करने तथा नमी संरक्षण हेतु विभिन्न कृषि अपशिष्ट जैसे सूखी पत्तियां, सूखी घास, भूसा, डण्ठल, टहनियों आदि को पौधों के आस–पास जड़ क्षेत्र पर डाल देते थे, जिससे नमी का ह्रास कम होता था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। विज्ञान की प्रगति के साथ–साथ इसका स्थान प्लास्टिक पलवार (मल्च) ले रही है जो वायु व तापरोधी होने के साथ–साथ वजन में हल्की होती है तथा इसे खेत में बिछाना व समेटना आसान है।

**पलवार क्या है?**

पौधे के आस–पास के जड युक्त भू–भाग को नमी संरक्षण हेतु ढकने को पलवार करना कहते हैं। पलवार करने से मृदा–जल का वाष्पीकरण कम होता है तथा फसल की पैदावार में वृद्धि होती है। फसल उत्पाद की गुणवत्ता में भी सुधार आंका गया है।

**पलवार क्यों?**

– बारानी खेती में नमी संरक्षण के लिए।
– सिंचित क्षेत्र में दो सिंचाई के बीच का अंतराल बढ़ाने / सिंचाई की संख्या कम करने के लिए।
– खरपतवार नियत्रण हेतु।
– मृदा के तापमान को अनुकूल बनाने हेतु।
– फसल में मृदा से होने वाली बीमारियों की रोकथाम के लिए।
– फसल का उत्पादन बढ़ाने के लिए।

– फसल उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार के लिए।

– वर्षा पर निर्भरता को सीमित करने तथा भू क्षरण रोकने के लिए।

**प्लास्टिक पलवार**

खेतों में प्रयोग हेतु विभिन्न प्रकार की प्लास्टिक मल्च बाजार में उपलब्ध है अतः भूमि व फसल के अनुरूप उपयुक्त प्लास्टिक मल्च का चयन करना चाहिए। मल्च का चयन उसके पदार्थ, मोटाई, चौड़ाई, रंग व फसल व फसल की अवधि आदि बातों को ध्यान में रख कर करते हैं। कृषि कार्यों में प्रायः एल.एल.डी.पी.ई (लिनिअर लो डेन्सिटी पॉलीइथिलिन) तथा एल.डी.पी.ई. (लो डेन्सिटी पॉलीइथिलिन) प्रकार की प्लास्टिक मल्च प्रयोग में लाते हैं। एल.एल.डी.पी.ई. मल्च कम गेज में अधिक संवर्धन (पंचर) प्रतिरोध के कारण ज्यादा लोकप्रिय हो रही है।

**(अ) प्लास्टिक पलवार की मोटाई**

प्लास्टिक पलवार की मोटाई मुख्यतः फसल की अवधि पर निर्भर करती है। यदि फसल कम अवधि की हो तो पतली पलवार लाभदायक रहती है। दीर्घकाल वाली फसलों के लिए मोटी पलवार अच्छी रहती है। अल्पकालीन अवधि वाली फसलों के लिए 25 माइक्रॉन, मध्यमकालीन के लिए 50 माइक्रॉन तथा दीर्घकालीन फसलों के लिए 100 या 200 माइक्रॉन मोटी पलवार उपयुक्त रहती है।

**(ब) प्लास्टिक पलवार का रंग**

प्लास्टिक पलवार विभिन्न रंगों में उपलब्ध है। अलग–अलग रंगों वाली पलवार भिन्न–भिन्न व्यवहार दर्शाती है। पारदर्शी प्लास्टिक पलवार तापमान बढ़ाने में सहायक होती है तथा शीत ऋतुओं में जड़ों के लिए अनुकूल तापमान बना देती है परन्तु इसका प्रयोग लवणीय भूमि में नहीं करना चाहिए कारण कि इसके उपयोग से भू सतह पर ज्यादा लवण इकट्ठे हो जाते हैं। काली पलवार खरपतवार नियंत्रण हेतु लाभकारी है तथा पैदावार में भी वृद्धि करती है। इसे लवणीय भूमि हेतु भी उपयुक्त पाया गया है क्योंकि इसके प्रयोग से पौध के जड़ क्षेत्र में लवण सान्द्रता कम रहती है। सिल्वर रंग की या सफेद अपारदर्शी पलवार कीड़ों की रोकथाम के लिए अच्छी रहती है वहीं पीली/सुनहरी पलवार कीड़ों को आकर्षित करती है।

अध्ययनों से पता चला है कि फूल गोभी में काली मिर्च में लाल रंग की पलवार से सफेद पलवार की तुलना में पौधों की अधिक वृद्धि पाई गई। नवसारी (गुजरात) में फूलगोभी में पीली व हरी पलवार पर किए गए प्रयोगों के आधार पर पीली पलवार के प्रयोग से हरी पलवार की तुलना में पौधों की सम्पूर्ण वृद्धि व उपज में ज्यादा अच्छे नतीजे मिले हैं।

**(स) विभिन्न फसलों के लिए प्लास्टिक पलवार की मात्रा**

प्लास्टिक पलवार की मात्रा फसल के प्रकार व अवस्था पर निर्भर करती है। फसल के

अनुसार पलवार क्षेत्र निर्धारित करते हैं। छोटी उद्यानिकी फसलों के लिए 20, फलदार वृक्षों जैसे आम,अमरूद, संतरा, किन्नू, नीबू आदि के लिए 40 तथा सब्जी की फसलों में 40–60 प्रतिशत तक पलवार क्षेत्र रखते हैं।

प्लास्टिक पलवार की मात्रा उसकी मोटाई पर भी निर्भर करती है। विभिन्न मोटाई की प्लास्टिक पलवार की मात्रा विभिन्न फसलों में पलवार क्षेत्र के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है जिसे सारणी–1 में दर्शाया गया है।

**सारणी 1. प्लास्टिक पलवार की आवश्यक मात्रा का निर्धारण**

| पलवार क्षेत्र (प्रतिशत) | पलवार की मोटाई (माइक्रोन) | | | |
|---|---|---|---|---|
| | 200 | 100 | 50 | 25 |
| | प्लास्टिक पलवार (किलोग्राम / हैक्टेयर) | | | |
| 20 | 380 | 190 | 96 | 48 |
| 40 | 760 | 380 | 192 | 96 |
| 60 | 1140 | 570 | 290 | 144 |
| 80 | 1520 | 760 | 386 | 192 |
| 100 | 1900 | 950 | 480 | 240 |

**पलवार बिछाना**

(1) पलवार को, जब हवा तेज चल रही हो, तब नहीं बिछाना चाहिए।

(2) पलवार को बिना सलवट डाले हल्का सा खींच कर बिछाना चाहिए।

(3) किनारे की लगभग 10 सेमी पलवार मिट्टी में 7 से 10 सेमी तक दबा देना चाहिए।

(4) यदि पलवार पहले बिछाई गई है तो उसमें पौधे से पौधे की दूरी को ध्यान में रखकर नियत स्थान पर छेद करने चाहिए तथा बिजाई या पौधरोपण छिद्रों में करना चाहिए।

(5) पलवार को तेज गर्मी में नहीं बिछाना चाहिए, क्योंकि तेज गर्मी में वह अधिक फैलाव की स्थिति में रहती है।

(6) बड़े वृक्षों में पलवार बिछाते समय पलवार का क्षेत्र वृक्ष के वितानवरण बराबर रखना चाहिए तथा मल्व क्षेत्र से पत्थर, छोटे कंकड़ तथा खरपतवार को हटा कर पलवार बिछानी चाहिए।

**प्लास्टिक पलवार और नमी संरक्षण**

प्लास्टिक पलवार अपने आर्द्रता–रोधी गुणों के कारण मिट्टी की नमी (आर्द्रता) को निकलने से रोकती है। पलवार के नीचे वाली भूमि की सतह से जो पानी वाष्पीकृत होता है वह पलवार की

निचली सतह पर संघनित होकर बूंदों के रूप में पुनःभूमि पर गिर जाता है। इस प्रकार मिट्टी की नमी कई दिनों तक सुरक्षित रहती है।

**प्लास्टिक पलवार से खरपतवार नियंत्रण**

खरपतवार नियंत्रण हेतु काली प्लास्टिक पलवार ज्यादा उपयुक्त है। इसे बिछाने के बाद समुचित प्रकाश नहीं मिलने के कारण खरपतवारों का अंकुरण तथा वृद्धि रूक जाती है। काली पलवार से 90 से 95 प्रतिशत तक खरपतवार नियंत्रण संभव आंका गया है। इसे अपनाकर खरपतवार निकालने में लगने वाले मानव श्रम (लेबर) व पैसा बचाया जा सकता है।

**प्लास्टिक पलवार और फसल की गुणवत्ता**

उद्यानिकी फसलों, विशेषकर फल एवं शाकीय फसलों में पलवार के प्रयोग से उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार आंका गया है। प्लास्टिक पलवार से फलों में मीठापन बढ़ता है, खारापन कम होता है तथा पोषक तत्वों में भी वृद्धि आंकी गई है।

**लवणीय मृदाओं में प्लास्टिक पलवार का प्रयोग**

प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से भूमि की ऊपरी सतह पर वाष्पीकरण कम होने से नमी की उपलब्धता ज्यादा समय तक बनी रहती है जिससे पौधे के जड़ क्षेत्र में नमी तनाव कम रहता है, फलस्वरूप लवणीय मृदाओं में लवणों की सान्द्रता जड़ों में कम रहती है तथा उत्पादन बढ़ता है।

**मृदा की संरचना का अनुरक्षण**

प्लास्टिक पलवार मिट्टी को वर्षा के सीधे प्रतिघात से बचाती है जिससे उसका क्षरण नहीं होता है तथा उसकी संरचना में परिवर्तन नहीं आता। भूमि ढकी होने से ऊपरी सतह के कार्बनिक अपशिष्ट व उपजाऊ तत्व तेज हवा के साथ–साथ उड़ने से बच जाते हैं।

**प्लास्टिक पलवार के प्रयोग की सीमाएं**

(अ) तापमान में ज्यादा बढ़ोतरी होने पर पौधों के जलने की संभावना।

(ब) भूमि पर छिड़क कर देने वाले खाद को लगाने में कठिनाई।

(स) अलग–अलग ज्यामिति वाली फसलों में प्रयोग करने में कठिनाई।

**प्लास्टिक पलवार का विभिन्न फसलों की उत्पादकता एवं जल उपभोग दक्षता पर प्रभाव**

सुनियोजित खेती विकास केन्द्र, कृषि अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा विभिन्न फसलों में काली प्लास्टिक पलवार का प्रयोग करके सिंचाई के अंतर्गत 40 प्रतिशत जल बचत के साथ फसल की उत्पादकता एवं जल उपभोग दक्षताओं पर किए गए प्रयोगों में पाया गया कि प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से फल एवं सब्जियों की जल उपभोग दक्षता में लगभग 20 से 44 प्रतिशत तक वृद्धि हुई तथा उत्पादन भी लगभग 25 से 70 प्रतिशत तक बढ़ा। अलग–अलग फसलों में काली प्लास्टिक पलवार का उत्पादन पर प्रभाव सारणी–2 में दर्शाया गया है।

सारणी 2. काली प्लास्टिक पलावर का विभिन्न उद्यानिकी फसलों की उत्पादकता पर प्रभाव

| फसल | औसतन फसल उत्पादन(क्विं / है) | | पलवार प्रयोग से उत्पादन |
|---|---|---|---|
| | पलावर बिछाने पर | बिना पलवार बिछाए में | तुलनात्मक वृद्धि(प्रतिशत) |
| बेर | 101.30 | 75.30 | 34.5 |
| अनार | 41.70 | 32.344 | 28.5 |
| बैंगन | 666.08 | 534.84 | 24.5 |
| पत्तागोभी | 191.56 | 112.72 | 69.9 |
| टमाटर | 570.70 | 433.30 | 31.7 |

प्लास्टिक पलवार के उपर्युक्त लाभों को ध्यान में रखते हुए इसका खेती में प्रयोग बहुत लाभकारी है प्लास्टिक पलवार के साथ–साथ ड्रिप सिंचाई विधि अपनाकर खाद भी ड्रिप सिंचाई के साथ ही दी जा सकती है तथा जल व खाद दोनों की अच्छी बचत की जा सकती है।

***

# उद्यानिकी फसलों का वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धतियों में समावेश

जे. पी. सिंह एवम् वी. एस. राठौड़

*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रोदशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

पश्चिमी राजस्थान का एक बड़ा भू–भाग बारानी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है और इसमें खेती वर्षा पर निर्भर है। कम एवम् अनियमित वर्षा के कारण यहॉ एक वर्षीय शस्य फसलों का उत्पादन बहुत अनिशचित तथा जोखिम पूर्ण है। कम वर्षा होने पर फसल नही हो पाती किन्तु ऐसी दशा में यहॉ की स्थानीय झाड़ियों, पेडो और घासों से थोडा बहुत उत्पादन अवश्य ही मिल जाता है। प्राकृतिक रूप से इन स्थानीय घासों, झाड़ियों और पेड़ों में शुष्क वातावरण की विषम परिस्थितियों जैसे अनियमित वर्षा, सूखा, पाला आदि को सहन करने की असीम क्षमता होती है। कृषि उत्पादन से प्राप्त होने वाली आय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए बहुवर्षीय घासों एवम् झाड़ियो व पेड़ों का समावेश बहुत आवश्यक है। इनके समावेश से कृषको की विभिन्न आवश्यकताओं जैसे अन्न, चारा, फल, लकड़ी इत्यादि की आपूर्ति के साथ–साथ पर्यावरण संतुलन को भी बनाये रखा जा सकता है।

वर्तमान में जो फल उत्पादन है वह पर्याप्त नहीं है। इसकी सतत् आपूर्ति हेतु वैकल्पिक भू. उपयोग पद्धतियों में जैसे उद्यानिकी–चरागाह, कृषि–उद्यानिकी, कृषि–उद्यानिकी–चरागाह कृषि–उद्यानिकी–वन–चरागाह आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। इन विभिन्न पद्धतियों में फसल, घास, झाड़ी और पेड़ो की जडे भूमि के अन्दर अलग अलग गहराई में जाकर पोषक तत्वों एवं जल का अवशोषण करती है। इसके साथ ही बारानी भूमि में वानस्पतिक आच्छादन से मृदा क्षरण रूकता है। पेड़ो की पत्तियॉ एवं घासों के अवशेष मृदा मे मिलकर मृदा की उर्वरता और कार्बनिक पदार्थो की मात्रा बढ़ाते है जिससे मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है। भूमि व संसाधन को ध्यान में रखते हुए वैकल्पिक भूउपयोग की निम्न पद्धतियों में से किसी को अपनाया जा सकता है ।

**उद्यानिकी चरागाह :** इस पद्धति में कृषि भूमि पर फल वृक्षों के साथ साथ चारा घासों को आदर्श सामंजस्य में उगाया जाता है जिससे फल उपज के साथ चारा भी मिलता है, साथ ही मृदा ओर पादप पोषक तत्वों का संरक्षण भी होता है। शुष्क क्षेत्रों में जल प्रबन्धन के लिए बूंद बूंद सिंचाई विधि बहुत उपयोगी है। इस विधि को अपनाकर कम पानी के उपयोग द्वारा फलोत्पादन कर अधिक आय प्राप्त कर सकते है ।

**कृषि–उद्यानिकी :** इस पद्धति में कृषि भूमि पर फसलो जैसे मोठ, ग्वार, बाजरा के साथ साथ फल वृक्षों को आदर्श सामंजस्य में लगाते हैं। फलदार वृक्षों एवं फसलों का चयन जलवायु, भूमि, बाजार मांग, उपलब्ध साधन तथा कृषक की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। फलदार वृक्ष एक निश्चित दूरी पर पंक्तियों में लगाते हैं। उनके बाद जो क्षेत्र बचता है उसमें फसलें उगाई जाती हैं।

**वन उद्यानिकी :** इस पद्धति में पहले वन पौधे लगा दिये जाते है और उपलब्ध स्थान में छोटे

फल वृक्ष लगा दिये जाते हैं जैसे नीबू, बेर, आदि।

**कृषि–उद्यानिकी–चरागाह :** इस पद्धति में कृषि भूमि पर फसलों जैसे मोठ, ग्वार, बाजरा के साथ साथ फल वृक्षों व चारा घासो को आदर्श सामंजस्य में उगाया जाता है।

**कृषि–वन–उद्यानिकी :** इस पद्धति में कृषि फसलों के साथ साथ फलदार एवं चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी देने वाली वृक्ष प्रजातियों को लगाते हैं। इस पद्धति से एक साथ खाद्यान्न, सब्जियों, फल और चारा, काष्ठ, ईंधन आदि प्राप्त होते हैं।

**कृषि–उद्यानिकी–वन–चरागाह :** इस पद्धति में कृषि भूमि पर फसलों के साथ साथ फल वृक्षों व झाड़ियों और पेड़ों चारा घास, को आदर्श सामंजस्य में उगाया जाता है। जहां पर जोत काफी कम है, वहां पर खेत की मेड़ों पर वृक्ष लगाये जाते हैं। पेडो व झाड़ियों के कारण नीचे उगने वाली घासों पर धूप की तेजी कम होने से घासें अधिक समय तक हरी रहती है जिससे पशुओं को ज्यादा समय तक हरा चारा मिलता रहता है।

**टांका आधारित बागवानी :** कम वर्षा वाले क्षेत्रो में वर्षाजनित जल अपवाह को एकत्रित करने के लिए विभिन्न परिमाप के टांके बनायें जाते है। इन टांकों में एकत्रित जल का समुचित उपयोग फलोत्पादन को अपनाकर किया जा सकता है। फल वृक्षों के बीच के स्थान को घास एवम् फसलों के उत्पादन के लिए उपयोग में लिया जा सकता है। इस उत्पादन प्रणाली को अपनाकर सीमित जल का उचित उपयोग के साथ साथ कृषकों की आय में भी बढ़ोतरी की जा सकती है ।

**प्रजाति चयन :** इन विभिन्न पद्धतियों के सुस्थापन हेतु फल वृक्ष, घास व बहुउद्देशीय पेड़/झाडियों का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनका चयन उस स्थान की जलवायु एवं मिट्टी के प्रकार के अनुसार करना चाहिए (तालिका 1) क्योंकि कुछ खास किस्म के फल वृक्ष घास पेड़ पौधे अपने उपयुक्त आवासीय परिवेश में ही अच्छी उत्पादकता देते है । जैसे कि सेवन व ग्रामना घास रेतीली मिट्टी और 250 मि0मि0 से कम वर्षा वाले क्षेत्रो में होती है । धामन व अजंन घास 250 मि0 मि0 से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो में अच्छी उत्पादकता देती है । पेड़/झाडियों में फोग रेतीले टीबों में तो खेजड़ी रेतीले मैदानी भागों में अच्छी आती है । क्षारीय भूमि के लिए जाल अच्छा है क्यांकि इसमें खारे पानी को सहने की क्षमता है ।

**तालिका 1 शुष्क क्षेत्रों में कृषि वानिकी के लिये उपयुक्त प्रजातियाँ**

| | |
|---|---|
| वर्षा<br>250 मि0मि0 तक | कृषि फसलें : ग्वार, मोठ, बाजरा, तिल<br>पेड़ झाड़ियां : खेजड़ी, रोहेडा, कुमट, मोपेन, फोग, बावली, बोर्डी,<br>फलदार पेड़ : कैर, बेर, लसोडा, बेल, आंवला, नीबू,<br>घासें : सेवण, धामण, मोडा धामण |
| वर्षा<br>250.500 मि0मि0 | कृषि फसलें : ग्वार, मोठ सरसों, मूंग<br>पेड़ झाड़ियां : अंजन, बबूल, अर्डू, सिरस, नीम, रोहेडा, शीशम, बोर्डी,<br>फलदार पेड़ : अनार, बेर, लसोडा, बेल, आंवला, नीबू, सहजन, करोंदा<br>घासें : धामण, मोडा धामण, कैल, सैन, इत्यादि |

## चारा व जलाऊ लकड़ी उपलब्धता

पश्चिमी राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का विशेष स्थान है । लेकिन पशुओं के लिए चारा की कमी मूलभूत समस्या है । पशुपालन तभी लाभदायक हो सकता है जब पशुओं को वर्ष भर चारा मिलता रहे । अकाल पड़ने पर सबसे अधिक प्रभाव यहॉ के पशुओं पर पड़ता है । वर्तमान में जो चारा उत्पादन है वह इसके लिए पर्याप्त नहीं है । अतः भू उपयोग की इन पद्धतियों में चारा घासों का समावेश किया जाय तो चारे की समस्या का समाधान हो सकता है। वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में चारे के साथ ही जलाऊ लकडी जैसे फोग, खेजड़ी आसानी से उपलब्ध नही है । इसके कारण दूसरे पेडो व झाड़ियां की लकडियो का उपयोग किया जा रहा है । जिससे स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है । यदि कृषि–उद्यानिकी–वन–चरागाह के अन्तर्गत फोग, बोर्डी, खेजड़ी, रोहेड़ा आदि लगाये तो चारे मे फोग का लासू, बोर्डी का पाला, खेजड़ी की लूंग के साथ–साथ जलाऊ व इमारती लकड़ी भी मिलती रहेगी ।

## उपसंहार

शुष्क पारिस्थितिक दृष्टिकोण से वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न पद्धतियों को अपनाकर कम लागत एवं कम साधनों में अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। फोग से फोगला, खेजड़ी से सांगरी व कैर पीलू, गोदां, गोंदी के खाद्य फल भी मिलते हैं साथ ही कुछ पेड़/झाड़ियों जैसे, कैर, गौदी आदि की औषधियों में भी मांग है जिससे अतिरिक्त लाभ लिया जा सकता है । इसके आर्थिक विश्लेषण में यदि हम मिट्टी की गुणवत्ता/उर्वरता में वृद्धि को भी समायोजित करते है तो पर्यावरण सुधार में इसका महत्व और भी बढ़ जाता है । सारांश में हम यह कह सकते है कि यहा की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में फलदार फसलों का काफी महत्व है । विशेषकर बारानी क्षेत्रों में कृषि वानिकी के अन्तर्गत वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्वितियों में उपयुक्त फलदार फसलों को लिया जा सकता है ।

***

# उद्यानिकी फसलों में पादप वृद्धि नियंत्रकों एवम् नियामकों का प्रयोग

एन.एस. नाथावत, वी.एस. राठौड़, बीरबल एवं सीमा भारद्वाज

*केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर*

पौधे अपनी वृद्धि और विकास के लिए जड़ों द्वारा अवशोषित कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्वों पर ही निर्भर नहीं रहते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विशिष्ट कार्बनिक यौगिक की भी आवश्यकता होती है, जो पौधों द्वारा संश्लेषित किये जाते हैं और उसी में रहकर पौधे की वृद्धि और विकास को प्रोत्साहित करते है। ऐसे कार्बनिक पदार्थ पादप हार्मोन कहलाते हैं। ये जटिल रसायनिक पदार्थ बहुत ही न्यून मात्रा में पौधों के विभिन्न अंगों में उत्पन्न होकर अपना वृद्धि पर सक्रिय प्रभाव दिखाते हैं। ऐसे पदार्थ सामान्यतः हारमोन्स अथवा पादप नियंत्रण अथवा वृद्धि नियामक या वृद्धि पदार्थ कहलाते हैं। प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से उत्पन्न हुये पौधों में ये यौगिक गुणों में पारस्परिक सामान्यता तथा किसी न किसी रूप में पौधों की वृद्धि पर नियंत्रण रखते हैं। इनका प्रयोग करने पर पत्तियो द्वारा शीघ्रता से शोषित कर लिये जाते हैं और तन्तुओं को प्रभाव स्वरूप अतिशीघ्र गतिशील बन जाते हैं। फल–सब्जियों में पौधों की बढ़वार, फूल लगने, फल व उसके उत्पादन में परिवर्तन लाने में पौध वृद्धि नियामकों (पादप नियामकों) का काफी योगदान रहता है।

**पादप हार्मोन** – वे कार्बनिक पदार्थ जो पौधे के किसी भाग में उत्पन्न होते हैं और दूसरे भाग में स्थानान्तरित हो जाते हैं, जहां वे अल्प मात्रा से पादप क्रिया को प्रभावित करते हैं जैसे – वद्धि कारक – ऑक्सिन, जिबेरेलिन तथा साईटोकाइनिन, वृद्धि निरोधक – इथाइलिन, एब्सिसिक अम्ल।

**पादप वृद्धि नियन्त्रक** – वे संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ जो रासायनिक संरचना में हार्मोन के समान हो तथा पादप हार्मोन की तरह कार्य करता हो, उसे पादप नियंत्रक कहते हैं। उदाहरण – इन्डोल ब्यूटायरिक अम्ल (आईबीए) नेफ्थीलीन एसिटिक अम्ल (एन.ए.ए.), 2,4–डाईक्लोरो–फिनाक्सि एसीटिक अम्ल (2, 4,–डी), 2, 3, 5 ट्राईक्लोरो फिनाक्सि एसिटिक अम्ल (2, 4, 5,–टी) आदि।

**पादप वृद्धि निरोधक** – वे सभी संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ जो पादप वृद्धि को दबाते हैं या वृद्धि क्रिया में रुकावट उत्पन्न करते हैं। उदाहरण – फास्फोन–डी, सीसीसी (साइकोसील), बी–995, एएमओ–1618 आदि। कुछ प्राकृतिक रसायन जो पौधे से प्राप्त होते हैं और पौधों की

वृद्धि में अवरोध उत्पन्न करते हैं, उसे अवरोधक कहते हैं। उदाहरण – इथाइलिन, एब्सिसिक अम्ल, फीनोलिक अम्ल आदि।

**हार्मोन कब, कितना और कैसे प्रयोग करें** – हार्मोन कब कितना और कैसे प्रयोग करें, यह निर्भर करता है, कि फसल का आर्थिक उत्पाद क्या है। जैसे पत्ती, फल, फूल, बीज, तना या जड़,। इन सबको ध्यान में रखकर फिर हार्मोन का चुनाव करते है, कि हमें पौधों में वृद्धि करनी है या पौधों की वृद्धि को रोकना है। इस प्रकार उपयुक्त हार्मोन का उचित समय पर प्रयोग करने से पौधे में कार्बन–नाइट्रोजन का अनुपात संतुलित होता है, पौधें के बसंतीकरण, प्रदीप्तिकाल तथा आर्थिक उत्पाद अवरोधक कारक को कम करता है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। हार्मोन की मात्रा सबसे महत्वपूर्ण कारक है। यह फसल की प्रजाति और फसल के प्रकार पर निर्भर करता है। हार्मोन की मात्रा तापमान, भूमि की उर्वरता और पौधों को उपलब्ध नमी की मात्रा पर निर्भर करता है। हार्मोन की मात्रा प्रयोग की विधि (पत्ती पर छिड़काव या जड़ में प्रयोग) पर भी निर्भर करता है। चौडी पत्ती तथा संकरी पत्ती पर अलग–अलग हार्मोन का अलग–अलग प्रभाव पड़ता है।

**हार्मोन का उपयोग** – वैज्ञानिक युग में हार्मोन का उपयोग फल–सब्जियों की विभिन्न समस्याओं के निदान के लिए हो रहा है जो इस प्रकार है –

1. **बीज उपचार** – जड़ों के शीघ्र निर्माण, वृद्धि, प्रसुप्तावस्था तोड़ने तथा उत्तम अंकुरण के लिए पादप वृद्धि नियामकों द्वारा बीजों को उपचारित किया जा सकता है। टमाटर, मूली तथा अन्य फसलों के बीज को आई.बी.ए. तथा जी.ए.–3 (5–20 पीपीएम), आई.ए.ए (1.50–1.75 पी.पी.एम), 2,4–डी (1–2 पी.पी.एम.), आई.ए.ए (1.50–1.75 पी.पी.एम.) 2,4,–डी (1–2 पी..पी.एम.), घोल से उपचारित करने पर अंकुरण क्षमता, पौधों की बढ़वार तथा उपज में वृद्धि होती है। आलू की फसल में बुवाई से पहले बीज का 250 पीपीएम एथरिल (50 मिली. दवा को 100 लीटर पानी में मिलाकर) या 25 पी.पी.एम. जिबरैलिक एसिड 250 मि.ग्रा. दवा को 100 लीटर पानी में मिलाकर के उपचार करने से आलूओं की संख्या व उपज में वृद्धि हो जाती है।

2. **कायिक प्रवर्धन** – कायिक प्रवर्धन की विभिन्न तकनिकों के विकास के फलस्वरूप फलदार पेड़ों से अच्छी फसल लेना सभव हो गया है। पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग फलों के पौधों की कायिक पुनः प्राप्ति के लिए सफलतापूर्वक किया जाता रहा है। इन्हें जड़ों की वृद्धि को प्रेरित करने और मूलकांड तथा मूलाकुर के बेहतर मेल द्वारा कलम उगाने की तकनीक को सफल बनाने में किया जाता है। फल वृक्षों में अपने गुण के समान नये पौधों को तैयार करने के लिए कायिक प्रवर्धन महत्वपूर्ण है। इसमें गूटी बांधना कलम लगाना तथा कलिका लगाना महत्वपूर्ण विधि है। गूटी तथा कलम में जड़ निकलने के लिए ऑक्सिजन का प्रयोग करते हैं। संश्लेषित

ऑक्सिन, आईबीए 2,4,–डी, एनएए के सान्द्र विलयन में कम समय तक तनु विलमन में अधिक समय तक कलम को डुबोकर लगाने पर जड़ तेजी से निकलती है और आसानी से लग जाती है।

सब्जियों की फसलों में पादप नियामको पर बहुत कम कार्य किया गया है। कायिक प्रवर्धन पर अभी और कार्य करने की आवश्यकता है, ताकि वृद्धि नियामकों के प्रयोग से सब्जियों की फसलों का सफलतापूर्वक प्रर्वधन किया जा सके। आलू के बीज को 20 पी.पी.एम वाले आईबीए से उपचारित करने पर उपज तथा जड़ों में बढोतरी होती देखी गई है।

**3. प्रसुप्तावस्था :** प्रसुप्ताअवस्था पर इन रसायनों के निम्नलिखित प्रभाव हो सकते हैं –

–बीज की सुशुप्तावस्था को तोड़ने के लिए जी.ए. का प्रयोग किया जाता है। जीए–3 के 25 पी.पी.एम. की सान्द्रता से बीज को उपचारित करने से सुशुप्त बीज में अंकुरण होता है। एथिलीन क्लोरोहाइड्रिन जैसे रसायनों को 3 से 6 प्रतिशत सांद्रता में प्रयोग करने से भी आलू में प्रसुप्तावस्था को सफलतापूर्वक तोड़ा जा सकता है।

– आलू तथा प्याज की खुदाई से पहले फसल पर 3000 पी.पी.एम. मैलिक हाइड्रोजाइड के छिड़काव से सुषुप्तावस्था में वृद्धि होती है, जिससे उसकी भण्डारण अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

–250 पी.पी.एम. इथेफोन का उपचार करने से सूर्यमुखी बीज का अंकुरण बढ़ जाता है।

– कुछ शीतोष्ण जलवायु (सेब, संतरा आदि) के बीज को अंकुरण के लिए शीतनिष्क्रियता तथा कुछ के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। इन बीजों को जीए से उपचारित करने पर इसकी अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।

**4. फूलों का निकलना :** फूलों का निकलना विभिन्न कारक प्रदीप्तिकाल, बसंतीकरण, कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात आदि पर निर्भर करता है। मूली गाजर आदि लम्बे प्रदीप्तिकाल चाहने वाले पौधों में जी.ए–3 के 100–1000 पी.पी.एम. के प्रयोग से अधिक संख्या में फूल निकलते हैं। पालक, गाजर, मूली और शीतऋतु की फसल फूलगोभी, पातगोभी आदि फसलों की बोल्टिंग की अन्तिम अवस्था में जी.ए के छिड़काव से काफी संख्या में फूल निकलते हैं। अल्पप्रदीप्तिकाल चाहने वाली फसलों में जीए के छिड़काव से फूल देर से निकलते हैं। औक्सिन के प्रयोग से नीबू और अनार में अधिक फूल निकलते हैं। वृद्धि निरोधक हार्मोन कोल्तार को जड़ में प्रयोग करने से आम, नीबू तथा अंगूर में फूल अधिक निकलता है। मैलिक हाइड्राजायड तथा 2,3,5–टी जनन अंगों के विकास में सहायक है, सेब और टमाटर में फूलों की संख्या को बढ़ाता है। फ्लोरीजेन हार्मोन फूल निकलने के लिए उत्तरदायी है जो अन्य हार्मोन द्वारा प्रभावित होता है। नैफ्थीलिन एसीटिक अम्ल का छिड़काव फूल आने पर करने से फूल कम झड़ता है।

**5. मादा फूल की संख्या बढ़ाना** – इन्डोल ऐसिटिक अम्ल, जी.ए–3 और एसकार्बिक अम्ल

(10 पी.पी.एम., 25 पी.पी.एम. और 50 पी.पी.एम.) का छिडकाव बैंगन में फूलों की संख्या बढ़ाता है और 25 से 50 पी.पी.एम. एसकार्बिक अम्ल से उपचारित पौधों में मादा फूलों की संख्या में वृद्धि होती है। कुकरबिटेसी कुल के पौधों में आक्सिन, इथाइलिन और वृद्धि निरोधक के प्रयोग से मादा फूलों की संख्या में वृद्धि होती है। जिबेरिलिन (1000 पी.पी.एम.) के उपचार से नर फूलों की संख्या में वृद्धि होती है। लौकी में मादा फूल की संख्या बढ़ाने के लिए 2 से 4 पत्ती की अवस्था में मैलिक हाइड्रायड और टी.आई.बी.ए (टीबा) का 50 पी.पी.एम. घोल का छिड़काव किया जाना चाहिए।

**6. फलों के लगने, झड़ने से बचाना, गुणों में वृद्धि करना एवं बीज रहित फल के उत्पादन (पार्थेनोकार्पी)** – फूलों में निषेचन क्रिया के बाद फल बनते हैं। इस क्रिया में आक्सिन, जिबरेलिन तथा साईटोकाइनिन सहायक होता है। संश्लेषित आक्सिन एन.ए.ए (20 पी. पी.एम.) एम.सी.पी.ए (20–50 पी.पी.एम.) 2–4 डी (2–5 पी.पी.एम.), 2, 4, 5–टी (100 पी.पी एम. ) के घोल का छिड़काव करने से टमाटर, बैंगन और कुकरबिटेसी कुल की सब्जियों से अधिक फल प्राप्त होती है। गाजर, गोभी आदि फसलों के अच्छे गुण के अधिक मात्रा में बीज उत्पादन के लिए जी.ए–3 (100–1000 पीपीएम) का छिडकाव करते हैं। जी.ए–3 (25 पी.पी.एम) का छिड़काव से टमाटर में लाल तथा अच्छे गुणों के फल लगते हैं।

नींबू वर्गीय फसल में फलों का गिरना एक सबसे बड़ी समस्या से बचने के लिए 2,4–डी (10 पीपीएम) 2,4,5–टी (25 पी.पी.एम.), एनएए (30 पी.पी.एम.) का छिड़काव करते हैं। पपीते में इथाइलिन का उपचार देने से अधिक मात्रा में पपेन प्राप्त होता है। अमरूद, नीबू वर्गीय पौधों में अच्छे गुण के फल प्राप्त करने के लिए बहार नियंत्रण किया जाता है। इसके लिए सीसीसी (साइकोसील), एस.ए.डी.एच का प्रयोग करते हैं।

अच्छी उपज के लिए फलों का पर्याप्त मात्रा में बनना अनिवार्य है। फलों का निर्माण निषेचन या फिर बगैर निषेचन के विकसित होते हैं तो उन्हें अनिषेक जनित कहा जाता है। बीज रहित फल के उत्पादन में साईटोकाइनिन, जिबेरेलिन और ऑक्सिन हार्मोन का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। काइनिन फल की कोशिका संख्या और आक्सिन, जिबेरेलिन कोशिका के आकार में वृद्धि कर उत्पादन को बढ़ाता है। ऑक्सिन के प्रभाव से फल देर से पकते हैं जिससे आकार में वृद्धि होती है। जी.ए–3 के घोल का फल लगने पर छिड़काव करने से टमाटर, बैंगन, कद्दूवर्गीय सब्जियों के बीज रहित फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार नीबू, पपीता, अंगूर में हार्मोन का छिड़काव कर बडा बीज रहित फल प्राप्त किया जा सकता है।

टिन्डे में अनिषेकजनित फल प्राप्त करने के लिए एन.ए.ए के 600 पी.पी.एम. घोल के रूप में आई.ए.ए., आई.बी.ए तथा एन.ए.ए के प्रयोग से पूर्णतया बीज रहित टमाटर उत्पन्न किये जा सकते

है।

**7. फलों को पकाने के लिए पादप हार्मोन का उपयोग** – फलों का पकना एक निश्चित अवधि के बाद होता है, इस प्रक्रिया में फलों में विभिन्न प्रकार के हार्मोन की मात्रा प्रभावित करती है। फल में एब्सिसिक अम्ल की मात्रा बढ़ने पर इथाइलिन के प्रभाव को उत्प्रेरित करता है जो फल को पकाने में सहायक है। ऑक्सिन एवं जिब्रेलिन की अधिक मात्रा फल के आकार को बढ़ाती है और फल देर से पकता है। कुछ किस्मों के फलों की 2,4–डी के 100 से 1000 पी. पी.एम. जलीय घोल में डुबोने पर परिपक्वता की गति बढ़ जाती है। 2,4–डी (20 पी.पी.एम.) 2,4,5–टी हारमोन्स को अनन्नास फलों के साथ उपचारित करने पर फल देर से पकते हैं। ठीक इसी प्रकार का उपचार, सेव और केले के फलों को 2,4–डी (100–1000 पी.पी.एम.) तथा 2,4,5,–टी (1000 पी.पी.एम.) देने पर फल शीघ्र पकते हैं।

**8. फूल के विरलीकरण में पादप नियन्त्रकों का प्रयोग** – किसी खास मौसम में फलतः को कम करने के उद्देश्य से फूलों का विरलीकरण किया जाता है। विरलीकरण का लाभ मुख्य रूप से उस मौसम में फलों का आकार तथा ग्रेड बढ़ाने में मिलता है साथ ही साथ पौधे की शक्ति पूर्णरूप में क्षीण नहीं हो पाती है। जिसे अगले वर्ष भी उससे समान फल मिल सके। पौधों पर पादप नियन्त्रकों का छिड़काव जब करना चाहिये जबकि पौधे पर फूल पूर्ण मात्रा में हों। इसके लिये 3–क्लोरो आइसोप्रोपाइल–एन–फिनाइल कार्बामेट (250–300 पी.पी.एम.) तथा एन. पी.ए लाभकारी सिद्ध हुए है।

**9. फल तुड़ाई में हार्मोन का उपयोग :** मशीन द्वारा तुड़ाई करने के लिए हार्मोन का छिड़काव सहायक सिद्ध होता है। 2,4–डी, 2,4–टी, सी.सी.सी तथा एब्सिसिक अम्ल के सान्द्र घोल का छिड़काव करने से पौधो की पत्तियां झड़ जाती है, जिससे फल तोडने में सुविधा होती है।

**10. भण्डारण क्षमता को पादप नियन्त्रकों का प्रयोग कर बढ़ाना –**

फल तथा सब्जियों को भण्डारित करने पर इनके गुणों में परिवर्तन हो जाता है, जिससे किसान को उचित मूल्य नहीं मिलता है, और काफी मात्रा नष्ट हो जाती है। जैसे आलू का स्टार्च, शुगर में परिवर्तित होना तथा भण्डारण के समय अंकुरित हो जाना। इन समस्याओं से बचने के लिए आलु की फसल को खुदाई से एक माह पूर्व मैलिक हाइड्राजायड (500–2500 पी. पी.एम.) घोल को छिड़कने से या एनएए (20 पी.पी.एम.) घोल में 1–2 दिन तक डुबोने से इस समस्या का निदान होता है। इसी प्रकार प्याज तथा लहसुन को खुदाई से 3 सप्ताह पूर्व मैलिक हाइड्राजायड (2500–3000 पी.पी.एम.) का छिड़काव करने से भण्डारण के समय अंकुरण और जड़ नहीं निकलते हैं।

**11. खरपतवार नियंत्रण** – खरपतवार नियंत्रण में हार्मोन का उपयोग बढ़ा है। 2,4–डी,

2,4,–टी, एम.सी.पी.ए, टी.सी.ए, आई.पी.ई, एन.ए.ए, मैलिक हाइड्राजाइड, डाइ–नाइट्रो ऑर्थोसेकेन्डरी ब्यूटिल फिनोल आदि के सान्द्र विलयन के प्रयोग से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। हार्मोन के प्रयोग से खरपतवार का बन्द होना, भोजन तथा जल के आवागमन को अवरूद्ध करना, कोशिका का नष्ट होना और पौधों में विष उत्पन्न होना। खरपतवारनाशी का चुनाव, खरपतवार और फसल के प्रकार आदि कारक को ध्यान में रखकर हार्मोन का चुनाव करना चाहिए।

**12. विषाणुओं की रोकथाम :** 150 पीपीएम सांद्रता वाले जीए के घोल के छिड़काव से पर्ण कुंचन विषाणु की रोकथाम होती है। इसी तरह 2,4–डी के 5 पी.पी.एम. घोल के छिड़काव से भी विषाणु प्रकोप में कमी आती है।

**13. क्षारीय भूमियों व शुष्क क्षेत्रों में** – वृद्धि नियामकों का क्षारीय व शुष्क खेती में भी काफी योगदान रहा है। सब्जियों में पौध रोपण से पहले साइकोसिल के 0.5 से 1.0 प्रतिशत (5 से 10 मिली. दवा को एक लीटर पानी में मिलाकर) के घोल में पौधों की जड़ों को 1 से 2 घंटे के लिये डुबोने के उपरान्त क्षारीय भूमियों में रोपाई करने से पौधें में खारेपन को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है जिसके कारण सब्जियों की उपज में वृद्धि पाई गई है। शुष्क क्षेत्रों में भी साइकोसिल (250पी.पी.एम.) का पौधों की वनस्पतिक बढ़वार के समय छिड़काव करने से पौधों में सूखा सहने की शक्ति बढ़ जाती है और उत्पादन में सुधार पाया गया है।

**पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग करते समय सावधानियां –**

1. पादप वृद्धि नियामकों की उतनी ही मात्रा प्रयोग करनी चाहिए जितनी मात्रा वैज्ञानिकों के द्वारा अनुशंसित की गयी हो। अधिक या कम मात्रा में प्रयोग करने से परिणाम पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
2. उन्हीं पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग किया जाना चाहिए जिन्हें उद्यानिकी फसलों के लिए अनुशंसित किया गया है।
3. वैज्ञानिकों के संस्तुति के आधार पर फसल की सही अवस्था एवं सही मात्रा में छिड़काव करना चाहिए।
4. घोल तकनीकी व्यक्ति की उपस्थिति में बनाना चाहिए।
5. घोल संतृप्त पानी में बनाना चाहिए।
6. यदि पादप वृद्धि नियामक पानी में घुलनशील न हो तो एल्कोहल या सोडियम हाइड्राक्साइड में घोलकर पानी में मिलाना चाहिए।
7. छिड़काव उस समय करना चाहिए जब वायु का प्रवाह तेज न हो ।

***

# सब्जियों एवं फलों का परिरक्षण

विमला डुकवाल, ममता एवं रीना

*स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

मानव आहार में फल तथा सब्जियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह ऐसे स्त्रोत हैं जिनके द्वारा आहार में विटामिन तथा खनिज लवण की प्राप्ति होती है। सलाद के रूप मे सब्जियां एवं फल भोजन के साथ ग्रहण किये जाते हैं तथा उनको अन्य भोजन पदार्थों की तरह पकाने की आवश्यकता नहीं है।

भोज्य पदार्थों को परिरक्षित करने के लिये उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की किस्म और मात्रा के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। भोज्य पदार्थ का संदूषण उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की मात्रा को प्रभावित करता है। अधिक मात्रा में जीवाणुओं की उपस्थिति भोज्य पदार्थों को जल्दी खराब कर देती है ऐसे पदार्थों को परिरक्षित करना भी कठिन होता है। स्वच्छतापूवर्क सार संभाल से भोज्य पदार्थों में उपस्थित जीवाणुओं की मात्रा में कमी करके इनके परिरक्षण अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

जाड़े के दिनों में फलों को साधारण तापक्रम पर ही संग्रहित करते हैं, गर्मी के मौसम में फल जल्दी सड़ जाते हैं और उसमें जीवाणु जल्दी वृद्धि कर जाते हैं। अतः इसको स्थायी रूप से संरक्षित किया जाना चाहिये ताकि उनका ऋतु के बाद भी सेवन किया जा सके। इन्हें विभिन्न विधियों द्वारा संरक्षित कर बिना मौसम में भी उपयोग में लाया जा सकता है तथा अधिक उत्पादन को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। संरक्षित फल व सब्जियां आहार को आकर्षक, स्वादिष्ट तथा सुगन्धित बनाते हैं।

**भोज्य पदार्थों को परिरक्षित करने से पूर्व निम्नलिखित बातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये–**

1. भोज्य पदार्थों के साथ काम करने से पहले हाथ, साबुन व पानी से अच्छी तरह धो लेने चाहिये।
2. कार्य करने के लिये स्वच्छ स्थान का चुनाव करना चाहिये।
3. भोज्य पदार्थ तैयार करते समय उचित उपकरणों व बर्तनों का इस्तेमाल करना चाहिये, लोहे, पीतल और तांबे के बर्तनों का प्रयोग नहीं करें ये भोज्य पदार्थों के साथ क्रिया कर उन्हें दूषित करते हैं।
4. बर्तनों और उपकरणों को साबुन तथा गरम पानी से अच्छी तरह धोना चाहिये।
5. खराब, कच्चे व अधिक विकसित फलों का चुनाव न करें। स्वस्थ व ताजे व पूर्ण विकसित फलों का ही परिरक्षण के लिये चुनाव करना चाहिये।
6. फल व सब्जियों को परिरक्षित करते समय अन्य सामग्री भी अच्छी किस्म की होनी चाहिये।

खाद्य पदार्थों को उनकी किस्म में बिना परिवर्तन के सड़े–गले व खराब हुए बिना अधिक समय तक सुरक्षित रखने को ही भोजन परिरक्षण कहते हैं।

ताजे फल और सब्जियां कटाई के बाद से ही विभिन्न कारणों से नष्ट होना प्रारम्भ हो जाते हैं अतः इन्हें अधिक समय तक खाने योग्य बनाये रखने के लिये परिरक्षित किया जाना आवश्यक हो जाता है। हमारे देश में अज्ञानता के कारण 20–40 प्रतिशत खाद्य पदार्थ (फल व सब्जी) उपलब्ध होते हुए भी खराब हो जाते है

**भोजन संरक्षण द्वारा उत्पादकों को निम्न लाभ होते हैं –**

1. अत्याधिक मात्रा में उत्पन्न होने के कारण उत्पादो का बाजार भाव सस्ता हो जाता है। उत्पादक यदि अधिक उत्पादन को परिरक्षित कर लें तो उसे अपने उत्पादन का अधिक मूल्य मिल सकता है।
2. आंधी, तेज हवा, पक्षियों के द्वारा काटे गये तथा गिराये गये फलों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इन्हें परिरक्षण के द्वारा उन्हें उपयोगी कर उचित मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।
3. परिरक्षण द्वारा बिक्री की अतिरिक्त संभावनाएं उपलब्ध होती है।
4. परिरक्षित सामग्री के भण्डारण में सुविधा रहती है। ये वस्तुएं कम स्थान घेरती है।
5. दूरस्थ स्थानों, पहाड़ी स्थानों तथा अन्य ऐसे स्थानों पर जहां कि यातायात के साधन पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं है, वहां परिरक्षण की सुविधा हो जाने पर फल तथा सब्जियों को संरक्षित कर उत्पादन का सदुपयोग किया जा सकता है। इससे इनके उत्पादन के लिये भी अधिक प्रेरणा मिलेगी।

**भोजन संरक्षण द्वारा उपभोक्ताओं को लाभ**

1. परिरक्षण के माध्यम से उपभोक्ता को विविध रूपों में तैयार भोज्य पदार्थ मिल जाते हैं।
2. इससे भोजन बनाने के समय की बचत होती है तथा पौष्टिकता, स्वाद और सुगन्ध भी बढ जाती है।
3. अनुपलब्धि की ऋतु में तथा कम उत्पादन के वर्ष में भी उचित मूल्य पर भोज्य पदार्थ मिल जाता है।

**निर्जलीकरण व सुखाना**

सब्जियों एवं फलों को सुखाकर एवं निर्जलीकरण करके हम न केवल अपनी पैदावार का समुचित भण्डारण कर सकते हैं अपितु सारा वर्ष उपयोग करके अपने भोजन में विविधता व पौष्टिकता ला सकते हैं।

1. निर्जलीकरण द्वारा नमी को इस सीमा तक कम कर दिया जाता है कि बैक्टिरीया, फफून्द आदि जीवाणुओं की वृद्धि रूक जाती है व एन्जाइम द्वारा संचालित क्रियांए भी निष्क्रिय हो जाती है जिससे भोज्य पदार्थ को बिना खराब हुए लम्बे समय तक सुरक्षित किया जा सकता है।
2. निर्जलीकरण द्वारा भोज्य पदार्थ का भार व आयतन कम हो जाता है (90 प्रतिशत तक), अतः

संग्रहण के समय आसानी हो जाती है क्योंकि सूखने से कम जगह में अधिक वस्तु सग्रहित की जा सकती है।

3. सूखे हुए खाद्य पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने में सरलता हो जाती है इससे खाद्य वस्तु की परिवहनीयता बढ़ जाती है।
4. आवश्यकता से अधिक उपज का परिरक्षण उसे सुखा कर सरलता से किया जा सकता है व उसका सदुपयोग उन देशों या जगहों पर किया जा सकता है, जहां पर उनकी पैदावार नहीं होती है।
5. बिना मौसम में भी सुखायी गयी सब्जियों का उपयोग करके भोजन में नवीनता लायी जा सकती है।
6. सुखी हुई खाद्य वस्तुओं में कुछ पोषक तत्वों (कार्बोज, प्रोटीन व खनिज लवण) की मात्रा नमी की न्यूनता के कारण बढ जाती है जो की भोजन मे पोष्टिक तत्वों की आपूर्ति को पूरा करने में सहायक है।
7. निर्जलीकरण खाद्य पदार्थ के परिरक्षण की सस्ती सरल विधि है। इसमें समय शक्ति व धन की भी बचत होती है।
8. रोजगार भी उपलब्ध होता है।

**उच्च ताप द्वारा भोजन परिरक्षण :**

इस विधि में ताप द्वारा जीवाणुओं की कोशिकाओं में उपस्थित प्रोटीन तत्व जम जाता है, साथ ही किण्वन तत्व निष्क्रिय हो जाते है जो कोशिका के उपापचय के लिये अतिआवश्यक है, जिसके कारण भोज्य पदार्थों में उपस्थित जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

**कैनिंग और बोतलीकरण**

उच्चतापक्रम पर भोज्य पदार्थों का परिरक्षण करने से सूक्ष्म जीवों की कोशिकाओं में उपस्थित प्रोटीन जम जाता है परिणामतः वे नष्ट हो जाते है। फल व सब्जियों का नमक और पानी के घोल में कैनिंग और बोतलीकरण करना उच्च तापक्रम पर भोज्य पदार्थों का संरक्षण करने के उदाहरण है।

बोतलों या डिब्बों को ताप द्वारा जीवणु रहित कर भोज्य पदार्थों को संरक्षित करने की विधि को कैनिंग कहा जाता है। यह प्रणाली घरेलू स्तर पर नहीं अपनायी जा सकती है। इस विधि में मुंह और हवा बन्द ढक्कन वाली बोतलों का चुनाव ही किया जाना चाहिये।

**कैनिंग प्रणाली**

1. ताजे, स्वस्थ व अच्छी किस्म के फल और सब्जियों का चुनाव कीजिये। फल पके हुए लेकिन मुलायम व पूर्ण विकसित होने चाहिये। फल दाग धब्बों से व पशु पक्षियों के द्वारा खाये गये नहीं होने चाहिए। अधिक पके फल साधरणतया सूक्ष्म जीवाणु से संक्रमित होते हैं। जबकि कम पके फल कैनिंग से कठोर हो जाते हैं। अतः सब्जियां भी मुलायम होनी

चाहिये। केवल टमाटर को छोड़कर (टमाटर अच्छे पके और लाल रंग के होने चाहिये)।

2. बहते पानी में फल व सब्जियों को धो डालिये।
3. फलों को छीलकर इच्छानुसार आकार में काट लीजिये।
4. फलों के टुकड़ों को 2–5 मिनिट तक उबलते पानी में विवर्णीकृत कर लीजिये।
5. पानी से निकालकर ठण्डे पानी में डाल दीजिये और पानी निकाल लीजिये।
6. टुकड़ों को स्वच्छ कीटाणुरहित बोतलों में भर लीजिये।
7. फलों के साथ गरम चाश्नी व सब्जियों के साथ नमक का घोल भर दीजिये चाश्नी या नमक का घोल मिलाने का उद्देश्य उत्पाद को स्वादिष्ट बनाना और फल व सब्जियों के बीच खाली जगह को भरना। बोतल के मुंह की तरफ 1/8 खाली जगह छोड़ें।
8. बोतल पर ढक्कन ढीला ही रहने दीजिए।
9. प्रेशर कुकर मे पानी भरकर 15–20 मिनिट तक बोतलों को पानी में उबालिये। इससे बोतलों में उपस्थित हवा निकल जायेगी, विटामिन भी नष्ट होने से बच जायेंगे और भोज्य पदार्थों व बोतल या डिब्बों के बीच होने वाले रासायनिक परिवर्तनों में कमी हो जाती है।
10. बोतलों को कुकर से निकाल लीजिये और ढक्कन लगा दीजिये।
11. ठण्डे व सूखे स्थान पर संग्रहित कर लीजिये ।

**निम्न ताप द्वारा भोजन परिरक्षण**

निम्न ताप भोज्य पदार्थों में उपस्थित किण्वकों की रासायनिक क्रिया को कम करता है तथा उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि कम करता है व रोकता है।

निम्न तापक्रम वृद्धि को रोकता है परन्तु धीमी उपापचय की क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

विकसित तथा विकासशील देशों में फल और सब्जियों को निम्न तापक्रम पर संरक्षित करना एक बहुत साधारण विधि है। कम तापक्रम पर भोजन को संरक्षित करने के लिए खाद्य पदार्थों को संग्रहित करने की उचित सुविधा और बिजली का लगातार प्रवाह होना आवश्यक है। यह विधि अपेक्षाकृत महंगी और सीमित समय तक भोज्य पदार्थों को संरक्षित करने वाली है।

निम्न तापक्रम से भोज्य पदार्थों में होने वाले रासायनिक परिवर्तन कम हो जाते हैं तथा ये सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि और क्रिया कम या रोकते हैं।

**निम्न तापक्रम द्वारा परिरक्षण हेतु फल व सब्जियों का चुनाव और तैयारी**

1. ताजी, स्वस्थ और कम नमी वाली सब्जियों का चुनाव कीजिये।
2. छीलकर इच्छानुसार टुकडों में काट लीजिये।
3. 3–4 मिनिट तक सब्जियों को विवर्णीकृत कीजिये।
4. पानी से अलग कर लीजिये ।
5. स्वच्छ प्लास्टिक की थैलियों में भर लीजिये।
6. अच्छी तरह से हवा निकालकर थैलियों को सील कर लीजिये।

7. थैलियों को प्रशीतन में संग्रहित कर लीजिये।

"रासायनिक पदार्थों द्वारा खाद्य वस्तुओं को संदूषित होने से बचाने की विधि को रासायनिक परिरक्षण कहा जाता है।"

जीवाणुओं की क्रियाशीलता को रासायनिक परिरक्षण पदार्थ रोकते हैं। ये रासायनिक पदार्थ जीवाणुओं की कोशिकाओं के अन्दर अनुवंशकीय संरचना को माप्त कर कोशिकाओं के अन्दर के पदार्थ में परिवर्तन लाते हैं, जिससे जीवाणुओं की कार्यक्षमता रूक जाती है।

ये रासायनिक पदार्थ जीवाणु एवं फफूंदी आदि को नष्ट करने एवं उनकी तीव्र वृद्धि को रोकने के लिये भोज्य पदार्थ में मिलाये जाते हैं।

रासायनिक पदार्थ बहुत ही प्रभावशाली होते हैं। इसलिये इनको थोड़ी मात्रा में ही डालने से खाद्य पदार्थ सुरक्षित हो जाते हैं। रासायनिक परिरक्षण पदार्थ को किसी भी भोज्य पदार्थ में मिलाने से पहले थोड़े से पानी में घोल लेना चहिये। इनका अधिक मात्रा में प्रयोग करने से खाद्य पदार्थ का स्वाद व रंग बदल जाता है एवं ये शरीर के लिये हानिकारक होते है। मुख्यतः दो रासायनिक सुरक्षित पदार्थों को भारतीय फल उत्पादन आदेश (1955 आई.एफ.पी) से भोज्य पदार्थ में मिलाने की आज्ञा है ये है सोडियम बेन्जोएट एवं पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट। सोडियम बेन्जोएट भोज्य पदार्थ में खमीरीकरण की क्रिया को रोकने में मदद करता है जबकि पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट फफूंदी एवं जीवाणु की वृद्धि को रोकने में सहायक और ये दोनों पदार्थ हानिकारक प्रभाव को भी कम करते हैं। ये दोनों रासायनिक पदार्थ 750 मि.ग्रा. से 1.5 ग्राम प्रति किलो ग्रा. तैयार खाद्य पदार्थ में मिलाये जा सकते हैं।

**रासायनिक संरक्षित पदार्थों का प्रयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये –**

1. रासायनिक संरक्षित पदार्थ उचित मात्रा में ही प्रयोग करना चाहिये क्योंकि निर्धारित मात्रा से अधिक प्रयोग करने से भोजन के रंग एवं गुण में परिवर्तन हो जाता है।
2. रंगीन फलों को सुरक्षित करते समय सोडियम बेन्जोएट ही डालना चाहिये क्योंकि यह फलों के रंग को बनाये रखने में सहायक है।
3. रासायनिक संरक्षित पदार्थ की निर्धारित मात्रा से कम का प्रयोग करने से उसकी कार्यशीलता में कमी हो जाती है।
5. रासायनिक संरक्षित पदार्थ को ठण्डे एवं सूखे स्थान पर संग्रहित करना चाहिये तथा निर्धारित समय के बाद इनका प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इनकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है।
6. रासायनिक संरक्षित पदार्थ को बोतलों से निकालते समय गीले चम्मच व हाथ का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

चीनी द्वारा भी भोज्य पदार्थों को संरक्षित किया जा सकता है चीनी की अधिकता से भोज्य पदार्थ को नष्ट करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि को रोका जा सकता है, जब चीनी का गाढा

घोल तैयार किया जाता है तो उसमें रसाकर्षण दबाव बढ जाता है। इस दबाव की वृद्धि हो जाने के कारण विभिन्न जीवाणुओं की उत्पति एवं वृद्धि रूक जाती है इससे आहार संरक्षण मे सहायता मिलती है। चीनी द्वारा संरक्षण का सिद्धान्त भी नमक द्वारा संरक्षण के सिद्धान्त जैसा ही है। नमकद्वारा संरक्षण एक शीतल प्रतिक्रिया है जबकि चीनी द्वारा संरक्षण में भोज्य मिश्रण गर्म किया जाता है। चीनी एक सरंक्षणकर्ता की तरह काम करती है क्योंकि चीनी की सान्द्रता से काफी उच्च रसाकर्षण दाब पैदा होता है जो सूक्ष्म जीवाणुओं से पानी खींचकर उनकी बढ़ोतरी को रोकता है।

चीनी द्वारा फलों को संरक्षित करने के लिये उसकी मात्रा फलों की अम्लता पर निर्भर करती है। 66 प्रतिशत चीनी का प्रयोग करना चाहिये शक्कर की मात्रा कम होने पर फफूंदी व यीस्ट के आक्रमण से फलों के रंग रूप व स्वाद आदि में परिवर्तन आ जाता है। इसके अलावा कम मात्रा में शक्कर का प्रयोग करने से खमीरीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है तथा स्वाद में भी परिवर्तन आ जाता है जैसे स्क्वेश आदि। शक्कर की मात्रा अधिक होने से शक्कर वापस जमने लगती है, जिससे उसकी गुणवत्ता में परिवर्तन आ जाता है जैसे जेम, जैली आदि। इसलिये फलों का संरक्षण करते समय फलों की अम्लता व पेक्टिन की मात्रा की जाच अच्छी तरह करनी चाहिये।

जैम तैयार करने के लिये फलों को उबालकर गूदे को उचित मात्रा में गाडा होने तक पकाते हैं। इस विधि में 45 प्रतिशत भाग का फल तथा 55–60 प्रतिशत भाग चीनी का होता है। जैम एक प्रकार के या दो या तीन प्रकार के फलों को मिश्रित कर बनाया जाता है।

सेब, अमरूद, करोदें, आम, पपीता, चीकू, नाशपाती आदि से जैम बनाया जाता है। सब्जियां जैसे गाजर, चुकन्दर आदि भी जैम बनाने के लिये प्रयोग किये जा सकते हैं।

**जैम बनाने के लिये मुख्य बातें निम्न है–**

1. अच्छी किस्म के पके फलों (न ज्यादा पके न थोड़े कच्चे का चुनाव करना चाहिये)।
2. बहते पानी में धोकर जरूरत के अनुसार छील लीजिये।
3. बीज, कांटे इत्यादि अनइच्छित भाग को निकालकर छोटे टुकड़ें काट लीजिये।
4. टुकडों को सावधानीपूर्वक मुलायम होने तक पका लीजिये।
5. एक समान गुदा प्राप्त करने के लिये बारीक छलनी या किचन मास्टर से निकाल लीजिये।
6. गूदे में चीनी और अम्ल मिला दीजिये। उचित मात्रा में ही कम चीनी का प्रयोग करना चाहिये, कम चीनी से बने जैम में खमीर उठ सकता है।
7. उसे धीरे–धीरे पकाईये जब तक की चीनी न घुल जाए।
9. चाहें तो एक चुटकी रंग मिला सकते हैं।
10. तैयार किये गये जैम को स्वच्छ कीटाणुरहित बोतलों में भर लीजिये और ठण्डा होने के लिये कम से कम 2 घन्टे तक रखिये।
11. पिघले मोम से बोतलों को सील कर लीजिये व स्वच्छ व ठण्डे पर संग्रहित कर लीजिये।

जैली अर्द्ध ठोस उत्पाद है जो कि बिना रेशेवाले फलों के साथ चीनी द्वारा बनायी जाती

है। अच्छी किस्म की जैली पारदर्शी आकर्षक रंग में चमक वाली तथा चम्मच से आसानी से फैलायी और बर्तन से निकाली जा सके ऐसी होनी चाहिये।

जैली बनने के महत्वपूर्ण तत्व है पेक्टिन, चीनी, अम्ल और पानी, इन पदार्थों का अनुपात इस प्रकार होना चाहिये। पेक्टिन 1 प्रतिशत, चीनी 60–65 प्रतिशत, अम्ल 1 प्रतिशत, पानी 33–36 प्रतिशत। यदि सारी सामग्री इस निश्चित अनुपात में होती है, तो उत्तम किस्म की जैली बनायी जा सकती है।

## जैली बनाने की विधि

1. स्वस्थ्य और ताजे फल लीजिये।
2. फलों को धोकर छोटे–छोटे टुकड़े काट लीजिये।
3. धीमी आंच पर मुलायम होने तक पकाईये, पानी का अनुपात फलों के चुनाव पर निर्भर करता है। इस वाले फलों में कठोर फलों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है।
4. उबाल आने के बाद ढक्कन लगाकर 35 मिनिट तक पकाइये।
5. मलमल के कपड़े से गूदा और रस अलग कर लीजिये।
6. छानते समय दबाईये मत इससे गूदा रस के साथ मिल सकता है।
7. गूदे को नाप लीजिये और मिलाकर गूदे को गाड़ा होने तक उबालिये, यदि तैयार उत्पाद चम्मच से गिराने पर V की आकृति बनाता है या थोड़ा सा उत्पाद ठण्डी जगह डालने पर गाड़ा ही रहता है तो यह बोतल में भरने के लिये तैयार है।
9. अधिक समय तक उबालने पर उत्पाद का रंग व सुगन्ध में परिवर्तन आ सकता है।
10. ठण्डा होने दीजिये, सील करने के लिये पिघला मोम उपरी सतह पर डाल दीजिये ढक्कन बन्द करके ठण्डे स्थान पर संग्रहित कर लीजिये।

ताजे या हिमान्कित पूरे या इच्छानुसार आकार के फलों के टुकड़ों को गाढ़ी चाश्नी (66–70 प्रतिशत) में मुलायम व पारदर्शी होने तक पकाया जाता है। कम मात्रा में चीनी मिलाने से उत्पाद में खमीरीकरण हो जाता है। साधारणतः फलों को इस प्रकार संरक्षित करने को "मुरब्बा" कहा जाता है जिसमें चीनी की सान्द्रता 68–70 प्रतिशत से कम नहीं होती है तथा संरक्षित उत्पादन को समान सान्द्रता में डिब्बा बन्द किया जाता है। आंवला, सेब, गाजर, अदरक और आम आदि को संरक्षित करना हमारे देश में अधिक प्रचलित है।

फलों को संरक्षित करने के लिये फल गूदेदार, मुलायम, अच्छी किस्म के खुशबू वाले होने चाहिये और जरूरत से ज्यादा चीनी नहीं मिलाना चाहिये। संरक्षित फलों को अधिक समय तक संग्रहित करने से उसका प्राकृतिक रंग और खुशबू आक्सीकरण परिवर्तन के कारण कम होता जाता है। हिमान्कित फलों से संरक्षित उत्पाद का साधारणतया रंग और खुशबू ताजा फलों से (फल जो सामान्य तापक्रम पर संग्रहित किये जाते हैं) अधिक अच्छा रहता है।

नमक आहार संरक्षण में विशेष रूप से सहायक होता है। लगभग 15–20 प्रतिशत नमक

की मात्रा खाद्य पदार्थो को खराब होने से रोकती है।

अचार स्थाई तौर पर संरक्षित किये जाते है इसलिये अधिक दिनों तक संरक्षित रखने वाले अचारों में नमक की मात्रा अधिक डाली जाती है।

तेल की परिरक्षण क्षमता उसके वायु अवरोधक गुणो के कारण होती है। जब किसी अचार में तेल मिलाया जाता है तो अचार के रिक्त स्थानों में भी तेल भर जाता है जिससे वायु शून्य स्थिति में हो जाती है। तेल में डूबे रहने के कारण पुनः वायु प्रविष्टि नहीं हो सकती है। तेल के कारण जीवाणु को आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा नहीं मिल पाती है इसलिये उनकी वृद्धि में क्रियाशीलता रूक जाती है।

मसालों में जीवाणुओ को नष्ट करने वाला गुण नहीं होता है परन्तु ये भोज्य पदार्थो में जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने में सक्षम होते हैं। आहार में विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग किया जाता है। जिनका जीवाणु अवरोधक प्रभाव भिन्न–भिन्न तथ्यों पर निर्भर करता है जैसे उनकी प्राप्ति के साधन, ताजगी और उनके भण्डारण की अवस्था (पूर्ण या चूर्ण अवस्था)। शुद्ध व आवश्यक मसाले तेल में उनके पिसे हुए रूप की अपेक्षा साबुत रूप में अधिक अवरोधकारी होते हैं। दालचीनी व लौंग में सिनेमिक एलडिहाइड और यूजीनाल नामक पदार्थ पाया जाता है अतः साधारणतया ये दूसरे मसालों की अपेक्षा अधिक जीवाणुरोधक होते है। काली मिर्च व अन्य मसाले कम अवरोधक तथा सरसों, जावित्री व जायफल, अदरक और भी कम अवरोधकशील पाये गये हैं। मसालों की सान्द्रता कुछ ज्यादा होने पर संरक्षित किये गये भोज्य पदार्थों में फफूंद की वृद्धि होने लगती है।

सरसों के तेल का प्रयोग यीस्ट व फफूंदी द्वारा खराब होने के प्रभाव को कम करता है। दालचीनी व लौंग इसकी अपेक्षा कम प्रभावकारी होता है। मसालों द्वारा भोज्य पदार्थों को संरक्षित करते समय यह ध्यान रखना चाहिये की मसाले स्वच्छ, ताजा व कीटाणु रहित है, नहीं तो ये भोज्य पदार्थों को खराब कर सकते है। दूसरे वनस्पतिक पदार्थ जिनको हम भोज्य पदार्थों में मसालों के रूप में प्रयोग करते हैं जैसे लहसुन आदि में भी जीवाणु अवरोधक तत्व पाये जाते हैं इनका रस बेसिलस सेप्टीलस नामक सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने में सहायक पाया गया है। इनकी जीवाणु अवरोधक क्षमता हवा के सम्पर्क में आने से नष्ट हो जाती है।

***